# शहीद बाबा लहणा सिंह

तारा सिंह 'अन्जान'

## *Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-library*

Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-library has been created with the approval and personal blessings of Sri Satguru Uday Singh Ji. You can easily access the wealth of teaching, learning and research materials on Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-library online, which until now have only been available to a handful of scholars and researchers.

This new Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-library allows school children, students, researchers and armchair scholars anywhere in the world at any time to study and learn from the original documents.

As well as opening access to our historical pieces of world heritage, digitisation ensures the long-term protection and conservation of these fragile treasures. This is a significant milestone in the development of the Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-Library, but it is just a first step on a long road.

Please join with us in this remarkable transformation of the Library. You can share your books, magazines, pamphlets, photos, music, videos etc. This will ensure they are preserved for generations to come. Each item will be fully acknowledged.

### To continue this work, we need your help

Your generous contribution and help will ensure that an ever-growing number of the Library's collections are conserved and digitised, and are made available to students, scholars, and readers the world over. The Sri Satguru Jagjit Singh Ji E-Library collection is growing day by day and some rare and priceless books/magazines/manuscripts and other items have already been digitised.

We would like to thank all the contributors who have kindly provided items from their collections. This is appreciated by us now and many readers in the future.

Contact Details

For further information - please contact

Email: NamdhariElibrary@gmail.com

१ ओंकार
श्री सत्‌गुरु राम सिंह जी सहाय

# बाबा लहणा सिंह शहीद

तारा सिंह अनजान

**अनुवादक**
जसपाल कौर

नामधारी दरबार श्री भैणी साहिब (पंजाब)

© नामधारी दरबार
श्री भैणी साहिब

प्रथम संस्करण : २००४
मूल्य : ४० रुपये
प्रकाशक : प्रधान
नामधारी दरबार
श्री भैणी साहिब–१४११२६
लुधियाना (पंजाब)
लेजर टाइपसेटिंग : ड्रीम सिस्टम, कटवारिया सराय, नई दिल्ली,
दूरभाष : 51688544
मुद्रक : Ram Krishna Press A-26, Naraina Industrial Area, Phase-II

**BABA LEHNA SINGH SHAHEED — *A Biographby***

**BY : TARA SINGH ANJAN**

श्री सद्‌गुरू राम सिंह जी
जिनके मार्ग–दर्शन में 1857 ई. से गऊ–गरीब की रक्षा
तथा भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम आरंभ हुआ।

## विषय सूची

श्री सद्‌गुरू जगजीत सिंह जी
जिनकी छत्रछाया में अमृतसर में हुए शहीदों का
'दिवस' प्रति वर्ष 15 सितंबर को मनाया जाता है।

बाबा लहणा सिंह शहीद जिन्होंने 15 सितंबर 1871 को गऊ—गरीब और देश, धर्म की रक्षा के लिए अन्य तीन देश भक्तों के साथ बलिदान दिया।

# प्रारम्भिक जीवन

कुर्बानी देने वाला मनुष्य केवल अपना ही नहीं बल्कि अपनी सात पुश्तों का नाम रोशन कर जाता है। गुरदासपुर (पंजाब) में पन्नव गाँव के साधारण से, नेक कमाई करने वाले घर में एक बालक ने जन्म लिया। उसने बड़े होकर केवल मनुष्यमात्र के लिए ही नहीं, बल्कि मूक गायों को कसाई की जालिम छुरी से बचाने के लिए और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए, फाँसी के रस्से को हँसते–हँसते चूम लिया। उसने दरबार साहिब स्वर्णमंदिर, अमृतसर को अपवित्र होने से बचाने के लिए कुर्बानी दी तथा उसकी पवित्रता को कायम रखा। उसके माता–पिता ने उस बालक का नाम लहणा सिंह रखा। अपनी शहादत देकर लहणा सिंह ने मानवता के लिए जो कार्य किया उसका ऋण कोई भी नहीं चुका सकता। उसकी कुर्बानी बेमिसाल थी।

बाबा लहणा सिंह के पिता बाबा मसद्दा सिंह जी जिला गुरदासपुर के पन्नव गाँव में लोहार, बढ़ई तथा मकान बनाने वाले राज–मिस्त्री का काम करते थे। सभी गाँव निवासी उनका बहुत आदर–सम्मान करते थे। गाँव के निवासी उनके साधु–स्वभाव, नेक कमाई तथा मधुर वाणी के कारण उनके मुरीद बन गए थे। इसीलिए सभी लोग आदरभाव से उनको बाबा जी कहकर पुकारते थे।

बाबा जी (मसद्दा सिंह) ने एक लोकोक्ति सुनी थी कि *गुरु बिन मुक्ति न होई* (गुरु बिना गति नहीं शाह बिना पत्त नहीं) अर्थात् पूर्ण गुरु के मार्गदर्शन के बिना इस भवसागर को पार करना कठिन है। जिस प्रकार रुपए–पैसे की आवश्यकता एक महाजन से पूरी की जा सकती है उसी प्रकार परलोक में गुरु ही सहायक होता है। इसी

कारण इनके हृदय में गुरु धारण करने की इच्छा प्रबलतर होती गई। उन्होंने उस समय समाज को धार्मिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया। उन्होंने अनुभव किया कि उस समय पंजाब में अनेक धार्मिक गुरु बने बैठे हुये हैं जिनके पास नाम–पूँजी नाम को भी नहीं है। सोढ़ी वंशज, भाई गुरदास की निम्नलिखित पँक्ति के कारण, सिक्खों के गुरु होने का अपना ही एकमात्र अधिकार मानते थे। वह पंक्ति है :

*जाणि ना देसां सोढिओं, होरसि अजरू, ना जरिया जावै।*

दूसरी ओर बेदी सिक्ख धर्म के मूल संस्थापक गुरु नानक के वंशज होने के कारण स्वयं को उनका उत्तराधिकारी समझते थे। बाबा साहिब सिंह तो चँवर भी झुलवाते थे। वह शेर–ए–पँजाब महाराजा रणजीत सिंह के गुरु भी थे। पंजाब के इतिहास में महाराजा रणजीत सिंह का समय अमन–चैन, सुख–शांति एवं सुख–समृद्धि का समय था परंतु इस समय लोग आध्यात्मिक पक्ष से ठन–ठन गोपाल ही थे। लोग अपनी धार्मिक संतुष्टि के लिए सोढी, बेदी या गुरुवंश से संबंधित होने के कारण त्रेहन, भल्ले आदि लोगों को भी पूरी श्रद्धाभावना से चरण–वंदना कर आदर–सत्कार देते थे परंतु इतना सब कुछ होने पर भी सिक्ख धर्म की गुरु–मर्यादा, परंपरा, सिक्ख–जीवन–पद्धति, अपने जन्म स्थान पंजाब में ही दिखाई नहीं देती थी। ऐसा लगता था वह जन्म स्थान छोड़, पँख लगाकर कहीं और उड़ गई है। बाहरी वेशभूषा तथा दिखावे मात्र के लिए अनेक लोग सिक्ख दिखाई देते थे परंतु गुरु गोविंद सिंह, दशमेशजी के सिक्खों के समय की सिक्खी–शान कहीं छिपी बैठी थी। उसी सिक्खी मर्यादा को पुनः स्थापित करने की ओर किसी को ध्यान न था। इस समय के सिक्खी जीवन का शब्द–चित्र ज्ञानी ज्ञान सिंह जी ने अपने ग्रंथ 'श्री गुरु पंथ प्रकाश' में इस प्रकार चित्रित किया है।

औरे रीत, औरे मीत, औरे प्रतीत प्रीत,<br>
खान पहिरान, ज्ञान मान औरे जन कै।

डारे दस्तारे, साफे भारे हैं सम्भारे,
कच्छे तज गए, धोती सुत्थ संग तन कै।
धारे हैं गरारे, तंबे तहमत अधिक लंबे,
जिनै देख सिक्खी गऊ कंबै, तुर्क गन कै।
सिक्खी दशमेश की सु की अपर देस की।
असिक्खी भरी पेशगी, छिनार बण ठण कै।

बाबा मसद्दा सिंह जी के अंर्तमन ने स्वयं–स्थापित हुए धार्मिक गुरुओं में से किसी एक पर भी विश्वास नहीं किया। इसी समय उन्होंने दूर देश हज़रों के वासी सत्गुरु बालक सिंह जी की दूर–दूर तक फैली सुंगधि को महसूस किया जो ग्यारहवें गुरु नानक थे। बाबा जी ने हज़रों जाकर सत्गुरु जी के दर्शन किए, उनके प्रवचन सुने जिससे उनका अशांत मन शांत हो गया। बाबा जी ने सत्गुरु जी के तेज़ प्रताप से प्रभावित होकर, उनके समक्ष नतमस्तक होते हुए उनसे 'नाम' प्राप्त किया। वह गुरुमंत्र प्राप्त कर वापस पन्नव आ गए।

बाबा जी, सत्गुरु जी द्वारा बताई हुई गुरु–मर्यादा के अनुसार ब्राह्म मुहूर्त बिस्तर से उठ जाते, सकेश स्नान कर भगवान के नाम का सुमिरन करते। अब उनके हृदय में नाम प्रस्फुटित होने लगा। यहाँ तक कि बाबा जी कार्य करते समय भी अपना ध्यान प्रभु सुमिरन में ही लगाए रखते। उनको यह भी आभास हो गया था कि उनकी आवागमन से मुक्ति होना स्वाभाविक ही है क्योंकि वह पूर्ण गुरु द्वारा बताई पद्धति से भगवान का सुमिरन करते हैं। गुरुवाणी में इस प्रकार का निर्णय लिखा हुआ भी है :

नानक सत्गुरि भेटिए, पूरी होवै जुगति,
हँसदियाँ, खेलदियाँ, पेनदियाँ, खावदियाँ विचै होवै मुक्ति।

बाबा मसद्दा सिंह जी के तीन सुपुत्र थे। सबसे बड़े गुज्जर सिंह, मंझले लहणा सिंह तथा इनसे छोटे गंडा सिंह। इन सुपुत्रों की भाग्यशाली माता का नाम सदा कौर था।

जब बाबा मसद्दा सिंह के मंझले बेटे लहणा सिंह ने १८७१ ई० में शहादत का जाम पीया तो पारिवारिक दस्तावेजों के अनुसार उनकी आयु ३२–३३ वर्ष की बताई जाती है। इस गणना से उनका जन्म १८३८ ई० का बनता है।

लहणा सिंह का बचपन मिट्टी के बने कच्चे घर, खुले आँगन में कुएँ, खेत बनाते और खेती–बाड़ी से संबंधित खेल खेलते व्यतीत होने लगा। इनके घर में बहुत–से पालतू पशु थे। जब इनकी आयु सात–आठ वर्ष की हुई तो इनको पशु चराने के लिए लगा दिया गया। बाबा मसद्दा सिंह अपने शौक के कारण इन पशुओं में गौ–धन अधिक रखते थे। लहणा सिंह गायों को चराने ले जाया करते थे। इनकी गायों के प्रति विशेष रुचि थी। इनका गायों से स्नेह भी बढ़ता जाता था जो रुचि के कारण स्वाभाविक ही था। वह पशुओं को चराते समय इधर–उधर ध्यान न देकर उनकी ओर ही विशेष ध्यान देते थे। यदि कोई जानवर किसी के खेत में जाने लगता तो वह उसको पुचकार कर खेत में जाने से रोक लेते। वह कभी भी किसी जानवर पर नाराज़ नहीं होते थे। न ही उसे डंडे से पीटते थे। वह अपने घर से ही उनको मारने के लिए डंडा आदि नहीं ले जाते थे। वह तो केवल कंधे पर एक अँगोछा रखते थे जिससे स्नेह से, प्यार से पशुओं को ठीक रास्ते पर ले आते थे। वह पशुओं को हाथ से थपकी देते। गायों को तो उन्होंने कभी हल्की–सी छड़ी भी नहीं मारी थी। दूसरे चरवाहों के पूछने पर कि वह पशुओं को डंडे या छड़ी से क्यों नहीं हटाते तो वह उत्तर देते – "इन मूक पशुओं को प्यार से ही समझाया जा सकता है। वह मेरा क्या बिगाड़ते हैं जो मैं उनकी पिटाई करूँ।"

लहणा सिंह के माता–पिता भी इनके काम से अति प्रसन्न थे क्योंकि कभी भी किसी ज़मींदार ने इनके काम में किसी प्रकार की कमी के बारे में कोई उलाहना नहीं दिया था। कहने का अभिप्राय यह है कि वह अपने कार्य के प्रति सतर्क थे। किसी बाल मित्र ने भी कभी किसी

प्रकार के लड़ाई–झगड़े की शिकायत नहीं की थी। यह नन्हा–सा चरवाहा भविष्य में एक ज़िम्मेदार चरवाहे के रूप में सिद्ध हुआ।

बाबा मसद्दा सिंह की रामगढ़िया (बढ़ई लोहार, राज) लोगों में एक विशेष पहचान तथा साख थी। इसलिए उनके इस नन्हे चरवाहे के लिए शादी के लिए कई लड़की वालों की ओर से प्रस्ताव आने लगे। बाबा जी अपने भाईचारे के कारण अधिक समय तक घर आए लोगों को इन्कार नहीं कर सके। जैसा कि कहा जाता है कि वर–वधू के जोड़े तो भगवान ही बनाकर भेजता है इसलिए पक्खो के रंधावे' गाँव के एक परिवार की लड़की से इनका रिश्ता हो गया। शादी के लिए बारात पक्खो के रंधावे गई। दो–तीन दिन तक हलवा–पूरी डटकर छकी गई। बारात की खूब आवाभगत की गई। चारों ओर रौनक भरा खुशनुमा माहौल बना रहा। बाबा मसद्दा सिंह पुत्र विवाह करके अपने गाँव पन्नव वापस आ गए। विदाई के समय डोली पर से पैसे लुटाए। घर आकर भी बहु–बेटे पर से पैसों की वर्षा की।

बाबा मसद्दा सिंह जी ने उनको अपना पुश्तैनी काम सिखाने के लिए अपने छोटे से दुकान–नुमा कारखाने में ही लगा लिया। उन्होंने उम्र भर पशु ही थोड़े चराने थे। उन्होंने भी अपनी घर–गृहस्थी संभालनी थी। कमाई भी तो करनी थी। अब लहणा सिंह छोटी–छोटी लकड़ियों को छीलने, उनकी गाँठें साफ करके रेंदा चलाने लगे। वह लकड़ियों में छेद करते। छोटी–बड़ी घड़ौचियाँ तथा पटरे बनाते। लकड़ी को अड्डे पर हिसाब से रखते, बसौले से उसको छीलते, तराशते, बना सँवार कर लोगों की आवश्यकता की छोटी–छोटी वस्तुएँ बनाते। मसाला कूटने का लकड़ी का पात्र, डंडा, डोई, बिलौनी, चारपाई तथा खटौले यहाँ बनाए व ठोके जाते थे। किसान द्वारा धरती में से अनाज पैदा करने के लिए प्रयोग किए जाने वाले औजार भी यहाँ बनाये जाते थे। बाबा जी के निर्देशानुसार लहणा सिंह आग की भट्टी में से लाल अँगारे–से दहकते लोहे को सँडासी

से पकड़कर, अहरन के ऊपर रखकर हथौड़ी या हथौड़े से चोट मार–मार कलछियाँ, फाले या और कोई आवश्यकता अनुसार औज़ार बनाते थे।

बाबा लहणा सिंह को लोहार और बढ़ईगिरी का अपना पुश्तैनी पेशा सीखने में अधिक माथा–पच्ची नहीं करनी पड़ी। वह शीघ्र ही एक समझदार नेक नीयत कारीगर के रूप में प्रसिद्ध हो गए। कल का नौसिखिया लड़का काम कराने वालों की तसल्ली का काम करने लगा।

बाबा जी का कारखाना उनके नेक सपूतों के लिए सांसारिक एवं व्यावहारिक रूप से शिक्षण केंद्र था। वह चौपाल, तृंजन (जहाँ औरतें इकट्ठी होकर चर्खा कातती हैं) तथा उसके बाद गाँव वासियों के लिए बैठने का एकमात्र स्थान था। बाबा जी के साथ सबका बड़ा अच्छा व्यवहार था। यह चारों – पिता, तीन पुत्र अपना काम ध्यान व लगन से करते थे। इनके पास हर कोई आता क्या छोटा, क्या बड़ा, क्या पुरुष, क्या स्त्री, क्या अच्छा, क्या बुरा। यहाँ तक कि लड़ाकू तथा झगड़ालू किस्म के लोग भी आते। भले भी आते, भद्र भी आते, शर्मीले भी आए बिना न रहते परंतु यह अपना काम करते रहते। आए हुए लोग अपनी बातें करते रहते जो यह काम करते–करते सुनते रहते। कभी–कभी इनको हुँकारा भी देना पड़ता। कुछ लोग तो केवल गप्पे हाँकने वाले ही होते। जब तक वह गप्पों के खज़ाने को खाली न कर लेते जाने का नाम ही न लेते। कुछ लोग अपनापन समझकर अपनी घर–गृहस्थी की बातें भी कर लेते। लड़ाके पड़ोसियों का रोना भी रो लेते। कुछ बिना मतलब ही दूसरों को बुरा–भला कहते रहते। इनको घर बैठे बिठाए ही सारे गाँव की खबर मिलती रहती। बाबा जी सभी कुछ आत्मसात कर लेते। वह निंदा या चुगली नहीं करते थे। किसी की बात किसी दूसरे को नहीं बताते थे। इस प्रकार लहणा सिंह को बड़ी दुनियाँ के इस छोटे–से समूह में अनेक प्रकार के

रंग–ढंग देखने को मिले। बचपन की इस दहलीज को पार करते–करते इन्होंने नम्रता, सहयोग, सहनशीलता, समझदारी, मित्रता, भाईचारा तथा अच्छे आचरण के लगभग सभी गुण ग्रहण कर लिए।

लहणा सिंह के घर में गुरु गोविंद सिंह जी की सिक्खी मर्यादा तो थी ही। अब वह अपने पिताजी के साथ सत्गुरु बालक सिंह जी के दर्शन करने गए। सत्गुरु जी के दर्शन कर, उनके प्रति इनकी श्रद्धा और बढ़ गई। घर की पवित्रता, शुद्धता, स्वच्छता, वैर–विरोधविहीन भक्ति भावना ने और अच्छे गुणों का इनमें समावेश भी कर दिया। अब अपनी आयु के सोलहवें वर्ष में वह पिता से आज्ञा लेकर बाहरी तथा विशाल दुनियाँ में बहुत कुछ सीखने–समझने के लिए निकल पड़े।

# राजगीर

उत्तर भारत के बहुत बड़े क्षेत्र पंजाब में अमृतसर नगर एक बहुत बड़ा व्यापारिक केंद्र रहा है। इस नगर में आस–पास तथा दूर–दराज के स्थानों से व्यापारी लोग तथा हाथ का काम करने वाले मिस्त्री मज़दूर आकर रहते थे। यह स्वाभाविक ही था कि रोज़ी–रोटी की तलाश में आए लोगों को घर–मकान की आवश्यकता होती थी। पूँजीपति लोग तो शानदार बढ़िया घर बनवाते थे। बाबा लहणा सिंह काम तो करते ही थे। इसलिए जब उन्होंने अपने घर से बाहर निकल कर काम करने की योजना बनाई तो उस समय अमृतसर में उनके लिए काम की कोई कमी नहीं थी। सोने पर सुहागे वाली बात यह थी कि उनका ननिहाल भी यहीं था। जब यह घर से चलने लगे तो इनके पिताजी ने इनको समझाया, "अमृतसर चले जाओ अपने ननिहाल। वह मकान बनाने के ठेके लेते हैं। वह अच्छे अनुभवी राज–मिस्त्री हैं। तुम, उनके पास वहाँ जाकर काम सीख लेना।"

लहणा सिंह गुजारे माफिक थोड़े–से कपड़े थैले में डालकर अपने ननिहाल पहुँच गए। ननिहाल का घर तो उन्होंने पहले से ही देखा हुआ था। इसलिए उन्हें घर ढूँढने में किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। जब वह घर पहुँचे तो सबको सति श्री अकाल बुलाई। सभी परिवारजन भी उन्हें सहर्ष मिले। सब की खुशी का ठिकाना न रहा। रात्रिभोज के पश्चात् उन्होंने अपने पूज्य नाना जी – स. खड़ग सिंह को अपने आने का प्रयोजन बताया। नाना जी ने प्रतियुत्तर में कहा, "काम कुछ कठिन है। सारा दिन तेज़ धूप में खड़े रहना पड़ता है। छोटी नानकशाही ईंटें होने के कारण काम बहुत कम

निपटता है। यदि कहीं छानी पर बैठे हो और रस्सी टूट जाए तो जान भी ज़ा सकती है। मज़दूरों से काम लेना भी आसान काम नहीं है। उन्होंने इनको समझाया कि वह वापस घर चले जाएँ। अपने काम जैसा सुख और कहीं नहीं है। बाहर की सारी से घर की आधी भली। छाया में, ठंड में अपने अड्डे पर बैठकर काम करना तो अपनी बादशाही है। नाना जी की इन बातों का उन पर चिकने घड़े पर पानी पड़ने जितना भी प्रभाव नहीं हुआ। आयु तो उनकी केवल सोलह वर्ष की ही थी परंतु थे इरादे के पक्के। घर से ही दृढ़–निश्चय करके चले थे इसलिए उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और नाना जी को संबोधित होते हुए बोले –

"कोई नहीं बापूजी और भी रामगढ़िए मिस्त्री काम करते ही हैं। मुझे भी अपना शौक पूरा कर लेने दीजिए।"

उन्होंने कौन से ब्राह्मण को बुलाकर पत्री बाँचनी थी या मुहूर्त निकलवाना था। इनके दृढ़ निश्चय से प्रभावित हो इनको बहौली और करंडी ले दी। एक चपटी–लकड़ी की फट्टी–सूत के धागे का गोला तथा दीवार का सीधापन नांपने के लिए साहल (धागे से लटका हुआ लोहे का वज़न) भी। इनको सबसे पहले मकान की नींव भरने के काम पर लगाया गया। कुछ समय बाद सीधी दीवार करने के लिए लगाया तथा साहल व चपटी से सीधी दीवार करने का अभ्यास भी करवाया जाने लगा। उस समय साधारण मिट्टी के गारे से ही दीवारें बनती थी परंतु कुछ लोग चूने की छोटी ईंट से भी चिनाई करवाते थे। राज काम करते–करते मज़दूरों को भी जोश दिलाने के लिए, ताकि वह काम शीघ्रातिशीघ्र करें, कहते जाते थे कि–

"लाओ ईंटें लाओ गारा,
दूर से आया घर बनाने वाला।"

इस प्रकार वह किसी को भी सुस्ती की चादर न ओढ़ने देते।

लहणा सिंह जी से यदि काम करते–करते दीवार कुछ टेढ़ी हो जाती या कोई और गलती हो जाती तो सूझ–बूझ वाला समझदार साथी मिस्त्री उन्हें समझा कर उनसे ठीक करवा लेता। अच्छा तथा ठीक काम करने का तो सूत्र सीधी दीवार करना ही था। जोड़ मिलाकर तो काम करना ही होता था। उस समय दीवारें हाथ–हाथ चौड़ी हुआ करती थी। इसलिए काम पर जोड़े–जोड़े लगते थे। कई बार चार–चार राज भी काम करते थे। ऐसे समय उनमें एकाध नौसिखिया भी रास आ जाता था परंतु तेज़ काम करने वाला जोड़ा दूसरे जोड़े से आगे निकल जाता था। लहणा सिंह ने भी दूसरों के प्रोत्साहन से तेज़ काम करने के लिए हाथ चलाना आरंभ कर दिया। जब साथ वाले साथियों ने कहना, "अच्छा भई बेटे," तो इन्होंने जल्दी–जल्दी करंडी द्वारा गारा बिछाकर, ईंटें लगाकर आवश्यकतानुसार बहौली से ठकोरनी।

लहणा सिंह को अब दाढ़ी–मूँछ आने लगीं। जवानी उनकी दहलीज़ पर दस्तक देने लगी थी। उन्होंने शीघ्र ही जीना चढ़ाने तथा मेहराब लगाने जैसा कठिन कार्य भी सीख लिया। १८–२० वर्ष की आयु तक उन्होंने ईटों को आवश्यकतानुसार तराशकर लगाने की सूझ भी प्राप्त कर ली। यहाँ रहते हुए वह कभी–कभी पन्नव भी जाते तो वहाँ पर अपने मिस्त्री के काम संबंधी सामर्थ्य के बारे में बताते रहते। उनकी माताजी भी प्रसन्न थीं कि उनके मायके वालों ने लाडले सपूत को रोटी कमाने लायक बना दिया है।

धीरे काम करने वाले कई मिस्त्री काम छोड़कर गाँव वापस चले जाते थे। वह वहीं सेपी का काम करते। वह धीरे–धीरे काम करते रहते। वह मालिकों की आशा अनुकूल काम न करते, कम काम करते, इसलिए उन्हे काम कम मिलता थां परंतु नौजवान लहणा सिंह को काम की कोई कमी नहीं थी। उनके लिए और काम, पहले काम के समाप्त होने से पहले ही तैयार होता था। कई पुराने अनुभवी

मिस्त्री तो यह भी बतियाते कि 'देखो भय्या कल का छोकरा हमारे पाँव उखाड़ने पर तुला हुआ है।'

शीघ्र ही वह अनुभवी, योग्य, सूझ–बूझ वाले निपुण मिस्त्रियों की श्रेणी में गिने जाने लगे। उनका कोई नागा न होता। उस समय एक निपुण मिस्त्री की एक दिन की पगार पाँच आने हुआ करती थी और मज़दूर की तो पाँच पैसे या सवा आना ही पगार होती थी। गाँवों के जाट भी अपने खेतों में हल चला कर, बीज बोने के लिए ज़मीन तैयार कर, बीज बोकर तथा पक्की फसल को काट कर शहर आ जाते थे। वह गारा, ईंट ढोते क्योंकि उनको सदा यह ही भय लगा रहता था कि खेतों में भरपूर फसल न होने से उनका सारा साल निर्वाह कैसे होगा। उन्हें सिंचाई के लिए वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता था। मज़दूरी किए बिना उनका हाथ तंग रहता था। वह अमृतसर शहर आकर लहणा सिंह जैसे मिस्त्रियों को ही कहा करते थे, –

'मिस्त्री जी! हमारी भी कहीं चार दिन दिहाड़ी लगवा दो।'

मिस्त्री लहणा सिंह काम की कमी कभी महसूस नहीं करते थे। उनको पगार भी उनकी इच्छानुसार पूरे पाँच आने ही मिलती थी। इसलिए वह अपनी इच्छानुसार मज़दूर भी रख लेते थे।

अमृतसर से वह कई बार पन्नव गाँव भी जाते थे। एक बार वहीं से उनके पिताजी उनको सत्गुरु बालक सिंह जी के दर्शनार्थ हज़रो ले गए। सत्गुरु जी ने उनके साथ बचन किया कि उन्होंने तो ठाकुरों की अमानत उनको (सत्गुरु राम सिंह जी) सौंप दी है। अब आप लुदगढ़ (लुधियाना) जाया करो, वह घर वापस आए। हृदय में दर्शन की प्यास थी। इसलिए पिता मसद्दा सिंह अपने सुपुत्रों के साथ पूछते–पूछते, ढूँढते–ढूँढते श्री भैणी साहिब जिला लुधियाना पहुँच गए। बस, दर्शन भेटत होत निहाला। उन्होंने श्री सत्गुरु जी से भजन (नाम) पूछा तथा नामधारी सिक्ख सज गए। सत्गुरु जी उनकी जाति में से ही थे इसीलिए वह अपनी सारी जाति को ही धन्य मानते थे।

मिस्त्री लहणा सिंह दर्शन कर, सबको मिल–जुल कर अमृतसर वापस आ गए। वह वधावियाँ वाली गली में अपने नाना स. खड़ग सिंह के घर रहते थे। इस गली का नाम, इनके पास इनके सगे साथियों के आने के कारण, बाद में कूकों वाली गली पड़ गया। वह प्रतिदिन सुबह होते ही जागते, स्नानादि से निवृत होकर भगवान के चरणों में ध्यान लगा लेते। हाथों के साफ, कार्य में दक्ष, सत्तोगुणी स्वभाव वाले इस नौजवान की अपने भाईचारे में भी प्रशंसा होने लगी।

१८६१ ई. में, इन्हीं दिनों वह अपना गौना कराकर अपनी पत्नी को भी साथ लिवा लाए। परिणामस्वरूप उनका अपने ससुराल में भी आना जाना बढ़ गया। बाबा लहणा सिंह को इस दौरान कुछ समय अपने ससुराल में भी रहना पड़ गया। वह वहाँ पर रहने नहीं, काम करने गए थे। उन्होंने वहाँ कई लोगों के घर बनाए। वह अपनी पत्नी के साथ अलग ही रहते थे और उसी के द्वारा पकाया खाना ही खाते थे।

कुछ ऐतिहासिक रचनाओं में अमृतसर शहीद हुए शूरवीरों में से बाबा लहणा सिंह का पैतृक गाँव पक्खो के रंधावे, गुरदासपुर, लिखा मिलता है। इसका कारण उनका वहाँ जाकर कुछ समय के लिए टिकनां ही लगता है।

१८५४ ई. से, जब से वह अमृतसर आए थे उनका स्थायी निवास तो अमृतसर ही था। अपने गाँव पन्नव अपने ससुराल के गाँव पक्खो के रंधावे तो वह केवल मिलने मात्र ही जाते थे।

अमृतसर रहते समय मिस्त्री लहणा सिंह अपनी जीवन–संगनी के साथ प्रत्येक संक्रांति के शुभअवसर पर या अमावस को स्वर्णमंदिर, दरबारसाहिब नमस्कार करने, माथा टेकने और पवित्र सरोवर में स्नान करने भी जाया करते थे। वहाँ पर वह कीर्तन सुनते थे। वहाँ पर उनको कुछ और नामधारी, सीधी पगड़ी वाले मिल जाते तो उनका हृदय कमल की तरह खिल उठता। उनको आपस में मिलकर, मेल–मिलाप कर, एक दूसरे के चरण स्पर्श कर और भी आनंद प्राप्त

होता था। उनका आनंद दुगुना हो जाता था। हर्ष का तो ठिकाना ही नहीं रहता था। जब किसी ने पूछना –

'संत जी! आपका क्या हाल है?'

'बस! जब से श्री सत्‌गुरु राम सिंह जी के चरणों में निवास मिला है देवता बन गए हैं।" प्रत्युत्तर में यह कहते। इसके साथ ही मस्ती में यह टेक दोहराते।

"पूरे सत्‌गुरु दी वडियाई, पशुआं तो देवते कीए।"

अंग्रेज़ों ने अमृतसर शहर तथा आस–पास के गाँवों के सक्रिय नामधारी सिक्खों की सूची बनाई। सरदार जसविन्द्र सिंह इतिहासकार ने यह सूची 'कूकाज़ आफ नोट इन दी पंजाब' पुस्तक में छापी है। जिनमें से दस व्यक्तियों का विवरण उनके रंग–रूप तथा नामधारी पंथ में उनकी कारगुज़ारी सहित छपा है। इनके नाम हैं :– नैना सिंह महन्त, बलवन्त सिंह महन्त, शाम सिंह नंबरदार सरहाली, काहन सिंह, महन्त हीरा सिंह, महताब सिंह पकौड़िया, खड़ग सिंह महन्त, बूटा सिंह, काला सिंह तथा महताब सिंह महंत। पकौड़िया शहर में तथा बाकी गाँवों में काम करते थे परंतु वह शहर तो आते–जाते रहते ही थे। इनके घूमने–फिरने के बारे में भी नामधारी सिक्खों में जानकारी थी। शहर में एक और लहणा सिंह जो रामगढ़िया थे के बारे में भी बताया गया है जो सत्‌गुरु का श्रद्धालु सिक्ख था।

मिस्त्री जी को सूचना मिली कि सत्‌गुरु जी उस इलाके का दौरा करने आ रहे है। १८६२ ई. की दीवाली को उन्होंने अमृतसर की धरती को अपने पावन चरणों के स्पर्श से कृतार्थ करना है। उनके आनंद का कोई पारावार न रहा। आस–पास के गाँवों में भी यह खबर चंदन की सुगंधि की भाँति फैल गई कि, 'गुरु प्रकट हुए हैं। वह दीवाली के शुभावसर पर अमृतसर दर्शन देने की कृपा करेंगे। प्रायः लोग दीवाली के समय मेला देखने तो यहाँ आते ही थे परंतु इस बार

उन लोगों ने भी, जो दीवाली से कुछ दिन आगे–पीछे आते थे विशेषरूप से अपना कार्यक्रम इस प्रकार से योजनाबद्ध किया कि वह दीवाली पर ही आए।

सत्‌गुरु जी ने भी माझे की संगत को दीवाली पर, विशेषरूप से अमृतसर पहुँचने का संदेश भिजवा दिया था। सतगुरु जी ने संगत तथा हजूरी सिक्ख सेवकों के साथ अपना दौरा प्रारंभ किया। स्वयं सत्‌गुरु जी कीर्तन करते जाते थे। सर्वप्रथम उन्होंने दुआबे की धरती को कृतार्थ किया। मुट्‌ठडे धर्मशाला में आस–पास के गाँवों के नामधारी सज्जन बड़े उत्साह से आए। सत्‌गुरु जी के दर्शन करके, शब्दकीर्तन तथा प्रचार सुनकर सत्‌गुरु जी के चरणसेवक बन गए। केवल मुट्‌ठडे के लोग ही नहीं, इस दौरे के दौरान धुलेते, रुड़का, चक्क आदि गाँवों के लोग भी गुरु मर्यादा अपनाकर गुरु वाले बन गए।

आप ब्यास दरिया पार करके, मार्ग में अपनी सिक्ख फुलवाड़ी को नामरस से सींचते हुए, मंजिल पर मंजिल पार करते अमृतसर पहुँच गए। वहाँ पर कीर्तन होने लगा। शहर में इस प्रकार का दृश्य नज़र आ रहा था जैसे मानसरोवर झील पर हँसों का समूह उतर आया हो। मिस्त्री लहणा सिंह ने भी सत्‌गुरु जी की कृपा का प्रसाद प्राप्त किया। आप सत्‌गुरु जी के नज़दीकी सिक्खों में गिने जाने लगे। आप, सत्‌गुरु जी संग अमृतसर हरिमंदिर साहिब भी गए और अकाल तख्त भी। वहाँ सत्‌गुरु जी का आदर–सत्कार तो क्या होना था बल्कि सत्‌गुरू जी द्वारा की गई भेंट अस्वीकृत कर, उनको तिरस्कृत–सा किया गया। इसको देखकर मिस्त्री लहणा सिंह सोच में डूब गए कि इन्हें सही मार्ग पर कैसे लाएँ। पुजारी सच्चे पादशाह जी से ईर्ष्या, जलन, क्यों करते हैं सत्‌गुरु जी तो नाम वाणी, सच्च, संयम एवम् वतन परस्ती (देशभक्ति) का ही उपदेश देते हैं। उनको इस हसद का कारण लोगों का दिन प्रतिदिन अधिक से अधिक मात्रा में नामधारी बनना तथा पुजारियों की प्रतिष्ठा में कमी आना अनुभव हुआ।

सच्चे पाद्शाह जी तो नाम रस बरसाने अगले दौरे पर चले गए परन्तु मिस्त्री लहणा सिंह जी नाम के रंग में रंगे मस्त रहने लगे। वह काम करते–करते भी चार अक्षरों से बने मंत्र का जाप करते रहते। यहाँ तक कि मज़दूरों को ईंटें गारा लाने के लिए आवाज़ लगाते समय लगे समय को भी वह व्यर्थ समझते थे क्योंकि तब सिमरन नहीं होता था इसलिए वह उनको कम ही बुलाया करते थे। दूसरी ओर मज़दूर भी चाल बनी रहने देने के कारण समान समय पर आवश्यकतानुसार पहुँचाते जाते। इससे कार्य करने में ज़रा भी विघ्न नहीं पड़ता था। मज़दूर लोग उनको साधू–संत मानते थे।

सत्गुरु जी माझा, दड़प का दौरा करते–करते लाहौर, शेख़पुरा होते हुए वज़ीराबाद से वापस आ गए। आपके नूरानी चेहरे का जलवा देखकर स्यालकोट के डिप्टी कमिश्नर, मैक्नब ने, ५ अप्रैल १८६३ ई० को पंजाब सरकार को रिपोर्ट भेजी। उसने लिखा–

"..... लुधियाने का एक प्रौढ़ व्यक्ति जो अपने आपको भाई कहलवाता है २०० लोगों के साथ इलाके का दौरा कर रहा था। जिनको वह रात्रि–समय बंदूकों के स्थान पर लाठियों द्वारा कवाईद करवा रहा है। वह शेखी बघारता है कि उसके ५,००० के लगभग अनुयायी है। वह किसी अधिकारी को नहीं मानता।"

सत्गुरु जी द्वारा करवाई जाती कवाईद के बारे में स्यालकोट के डिप्टी कमिश्नर ने बहुत बढ़ा–चढ़ा कर लिखा। इसके साथ ही उनके अनुयायियों की संख्या ने पंजाब सरकार के कान खड़े कर दिए। आपके बारे में सभी उपायुक्तों को गुप्त रिपोर्ट भेजने के आदेश भेज दिए गए।

आपने वापस आते समय भी अमृतसर दर्शन दिए। संगत में से लहणा सिंह के हृदय में जिस धधकती ज्वाला का आभास सतगुरु जी को हुआ उसने लहणा सिंह को गुरु जी का और अधिक स्नेहपात्र बना दिया। सच्चे पात्शाह जी उन्हें ऐसे विश्वसनीय सिक्ख मानते थे

जिन्हें किसी भी प्रकार की कोई भी जिम्मेवारी का कार्य सौंपा जा सकता था।

अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर मेज़र मरसर को भी सरकारी आदेश प्राप्त हो चुका था। इसलिए वह रिपोर्ट तैयार करने के लिए स्वयं सत्‌गुरु जी के पास आया तथा उसने उनके साथ बातचीत की। मेज़र मरसर ने लिखा कि आपके साथ लाठियाँ तथा डंडे रखने वाले ऊँचे, लंबे–तगड़े जवान थे।

"क्योंकि बाग़ियाना तरज़े बयान का प्रयोग ही नहीं किया गया एवम् वह स्वयं भी शांतिप्रिय ही लगा। इसलिए भरे मेले में उसके व्यवहार में दखलअंदाजी करना नामुनासिब समझा गया।"

संत लहणा सिंह का भी किसी राजनैतिक विचारधारा से कुछ लेना देना नहीं था। वह मेले में सत्‌गुरु जी के दर्शन करके ही धन्य–धन्य हो रहे थे। नदरी नदर निहाल हो रहे थे।

१८६५ ई. में संत जी के परिवार में एक बच्ची ने जन्म लिया। औरतों ने तो दुखद खबर जानकर बड़े ग्लानि भरे भाव से आकर बताया कि "देवी आई है पत्थर।" परंतु संत लहणा सिंह जी ने उनको प्रसन्नता प्रकट करने के लिए कहा। बच्ची एक खिलौना थी उन सबका हृदय प्रसन्नता से भरने के लिए। सत्‌गुरु राम सिंह जी का आदेश भी औरत या लड़की को तिरस्कृत निगाहों से देखने का नहीं था। बल्कि लड़कियों को अशिक्षित न रखने के हुक्मनामे जारी करके तथा उनको मारने, बेचने, बाल–विवाह करने जैसी कुरीतियों पर आपने रोक लगा दी थी। उन्होंने दान–दहेज देने पर भी प्रतिबंध लगाया था। इसलिए उनका श्रद्धालु सिक्ख उनके वचनों पर कैसे अमल न करता!

निपुण, अनुभवी लहणा सिंह ईमानदारी की नेक कमाई करके अपने परिवार का पालन–पोषण करते थे तथा घर आए साधू–संतो–सिक्खों की सेवा–सुश्रुषा भी करते थे।

# डाक संचालक

मिस्त्री लहणा सिंह ने नामधारी सिक्खों के साथ सामीप्य स्थापित कर लिया था। वह दिवान में बंदगी करने वालों या सेवा करने वालों की प्रथम पंक्ति में होते थे।

उन्हें ज्ञात हुआ कि ब्रिटिश प्रशासकों ने सत्गुरु जी को श्री भैणी साहिब में नज़रबंद कर दिया है। ७ जून १८६३ ई. से उनको गाँव से बाहर, कहीं भी जाने की आज्ञा नहीं थी। यह नज़रबंदी का समय लगभग तीन वर्ष तक रहा। १६ मार्च १८६७ ई. को सत्गुरु जी ने अपने श्रद्धालु सिक्खों, जत्थेदारों, सूबों संग होले–महल्ले के समय श्री आनन्द पुर साहिब दर्शन देकर यह प्रतिबंध तोड़ा।

इस नज़रबंदी के दौरान सिक्ख अपने क्षेत्र में सत्गुरु जी के दर्शन करने के लिए तड़पते रहे। अब मिस्त्री लहणा सिंह के हृदय में यह विचार घर करता गया कि हुकूमत ने सत्गुरु जी के साथ अन्याय किया है, वह सत्गुरु जी के दर्शनार्थ श्री भैणी साहिब जाते, सरकार के विरुद्ध कुछ करने की आज्ञा माँगते परंतु सच्चे पात्शाह जी उनको सर्वथा शांत रहने की आज्ञा देते।

सत्गुरु जी ने सिक्ख संगठन को और सुदृढ़ करने के लिए योजना बनाई। इसी योजना के अंर्तगत २२ सूबों को स्थापित किया गया। उन सूबों को गुरु–सिक्खी, धर्म प्रचार–प्रसार, स्वदेशी तथा स्वतंत्रता का संदेश देने के लिए देश–प्रदेश में भेजा गया।

सत्गुरु जी ने दूर–दराज़ बैठे, कार्यरत सूबों द्वारा श्री भैणी साहिब से संपर्क स्थापित करने के लिए, आवश्यकतानुसार नेतृत्व करने के लिए, सिक्ख संगठन को हुक्मनामे ज़ारी करने के लिए

अपना निजी डाक प्रबंध स्थापित किया। इस डाक प्रबंध के मुख्य प्रबंधक सूबा साहिब सिंह जी को मनोनीत किया गया। यह सेवा गुप्त तथा तत्कालीन थी। कई बार संदेश मुँहज़ुबानी (मौखिक) ही पहुँचाने होते थे। इसलिए स्थान–स्थान पर संदेश पहुँचाने के लिए, हर पड़ाव पर, विशेष विश्वासपात्र सिक्खों के साथ संपर्क स्थापित किया गया। सूबा साहिब सिंह स्वयं भी बंगाली पुर (अमृतसर) से संबंध रखते थे। इसलिए उन्होंने अमृतसर क्षेत्र में बाबा लहणा सिंह की शोभा सुनी हुई थी। वहाँ की डाक पहुँचाने के लिए आपने श्री सत्गुरु जी से इनके नाम की आज्ञा ले ली। इनको जब इस दी गई सेवा के बारे में मालूम हुआ तो अपने को अहोभाग्य समझा।

यद्यपि डाक प्रबंध द्वारा भेजे गए संदेश, लिखित या अलिखित, सरकार की समझ में न आते परंतु यह डाक–प्रबंध ब्रिटिश सरकार के लिए चर्चा एवम् चिंता का विषय सिद्ध हो रहा था। यह बात भी अनोखी थी। इससे पहले किसी भी स्वतंत्रता–संग्राम–जत्थेबंदी ने इस सीमा तक अपनी संगठनात्मक प्रक्रिया की संरचना नहीं की थी।

१६ मार्च १८६७ ई. को केंद्रीय पुलिस, लाहौर द्वारा अपने उच्चाधिकारियों को नामधारियों की सक्रियता के बारे में रिपोर्ट भेजी गई। इस रिपोर्ट में इस डाक–प्रबंध के सुचारु एवम् सराहनीय कार्यक्रम के प्रबंध का भी वर्णन किया गया। उस रिपोर्ट में लिखा गया।

'कूके जिनको आमतौर पर संत–खालसा भी पुकारा जाता है, का निजी डाक–प्रबंध है। यह प्रबंध प्रशंसनीय है। गुप्त आदेश पूर्वकाल के (स्कॉटलैंड वाले) स्काटिश दिनों जैसे प्रतीत होते हैं। कोई एक कूका संदेश लेकर स्वयं ही उसी धर्म के दूसरे अनुयायी के पास उसके गाँव आता है। संदेश लेने वाला व्यक्ति जो भी कार्य कर रहा हो, चाहे खाना खा रहा हो, हाथ वाला कोर भी छोड़कर बिना कोई प्रश्नचिन्ह लगाए, कोई सवाल पूछे, संदेश लेकर आगामी पड़ाव या

ठिकाने के लिए नौ दो ग्यारह हो जाता है, महत्वपूर्ण संदेश मुँहज़ुबानी (अलिखित) भेजे जाते हैं, लिखित नहीं।

मेज़र परकिंज आगे इस बारे में लिखता है कि संदेशवाहक संदेश ले जाते समय जरनैली सड़क को छोड़ने के लिए लंबे घुमावदार मार्गों पर से जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है यह संगठन यद्यपि धार्मिक सुधारों के लिए बनाया गया था फिर भी इसके संस्थापक द्वारा उसके विश्वसनीय लोगों के द्वारा इसको खतरनाक संगठन बनाया जा सकता है।

इस कार्य में मिस्त्री जी भी सक्रिय सहायक थे। उनको जब भी संदेश मिलता वह वहीं पर बहौली–करंडी छोड़कर, साथ काम करने वाले को बताकर, यदि घर होते तो रोटी पानी, आराम छोड़कर, गुरु जी के आदेश को प्राथमिकता देकर, आदेश का पालन कर उनकी प्रसन्नता के पात्र बनते। उनकी जीवन–संगनी भी इस कार्य से प्रसन्न थी कि पुण्य कमाया जा रहा है।

मिस्त्री लहणा सिंह जी सत्गुरु सच्चे पात्शाह जी की कृपा के पात्र थे। नामधारी सिक्खों में उनका अच्छा खासा आदर–सत्कार था। सरकारी रिपोर्टों से उनके मेहनती, लगन से काम करने वाले कर्मठ, संतोषी सिक्ख होने का पता लगता है। सरकार नामधारी आंदोलन पर गुप्त रूप से निगरानी रख रही थी। वह उन सिक्खो की सूची भी तैंयार कर रही थी जो आम लोगों से अधिक नामधारियों में आया–जाया करते थे। उसने २५२ नामधारी सिक्खों की अलग–अलग ज़िलों से सूची तैयार की। १८ जनवरी १८६७ ई. को यह सूची तथा रिपोर्ट पुलिस ऑफिस लाहौर ने अपने उच्चाधिकारियों को भेजी। उस सूची के २१ अनुक्रमांक पर अमृतसर के लहणा सिंह का नाम दर्ज़ था।

टी. एच. थार्नटन, सचिव पंजाब सरकार ने भारत के विदेशी विभाग के सचिव को सक्रिय पंजाबी नामधारियों के बारे में एक रिपोर्ट भेजी। २ फरवरी १८६७ ई. को उस रिपोर्ट में प्रमुख नामधारी नेताओं

का नाम भी सम्मिलित था। उन नामों में भी चौथे अनुक्रमांक पर लहणा सिंह का नाम लिखा हुआ था।

सरकारी दस्तावेज़ यह प्रकाशित करते हैं कि मिस्त्री लहणा सिंह नामधारी साध–संगत के आदरणीय सुपात्र थे। साध–संगत के साथ मिलने आते–जाते समय ही हाकम सिंह पटवारी, फतेह सिंह भाटड़ा तथा बीहला सिंह नारली जैसे लोगों के साथ मित्रता के सूत्र में पिरोए गए। यह चारों कई बार इकट्ठे ही हरिमंदिर साहिब माथा टेकने, सरोवर में स्नान करने जाते थे।

इनका सम्पर्क गाँव में रहते सत्गुरु जी के और अधिक विश्वासपात्र सिक्खों के साथ होता गया। इस मेल–मिलाप होने में आप द्वारा पहुँचाई जाती डाक का बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। सहज भाव से ही आप का आदर सत्कार बढ़ता गया जो आत्मा को और शक्तिशाली तथा मन को और अमीर करता गया।

मिस्त्री लहणा सिंह जी की प्रसिद्धि के कारण कुछ लोग उनको सूबा समझने लगे थे। सरदार नाहर सिंह एम.ए. ने भी नामधारी इतिहास में आपको सूबा लिखा है यद्यपि उन्होंने यह विवरण नहीं दिया कि लहणा सिंह कौन सा सूबा था परंतु मिस्त्री जी के पारिवारिक हवालों से ज्ञात होता है कि आदरभाव से संगत उनको सूबा जी कहकर ही संबोधित करती थी। वैसे सत्गुरु जी द्वारा मनोनीत सूबों में आपका नाम नहीं था। हाँ उनके सक्रिय होने के बारे में किसी को किसी प्रकार का संशय नहीं था। क्योंकि –

सेवक कउ सेवा बनि आई।

इस सेवक को और अधिक सेवा करने का सुअवसर १८६७ ई. की दीवाली पर मिला। सत्गुरु राम सिंह जी ने दशहरे के अवसर पर ही, श्री भैणी साहिब में इस मेले की योजना के बारे में साध–संगत को बताया था। इसलिए आपने प्रबंध एवम् प्रचार हेतु

सूबा ब्रह्मा सिंह एवम् सूबा जोता सिंह कों पहले ही संदेश भेज दिया था क्योंकि मेला पहले की अपेक्षा बड़े स्तर पर मनाया जाना था।

मिस्त्री लहणा सिंह तथा और अन्य नामधारी सिक्ख मेले की तैयारी में जुट गए। उन्होंने कुछ दिन के लिए अपना काम भी छोड़ दिया। रिहाइशी तंबू, घड़ियालियों के तालाब के पास, चार्टीविंड दरवाज़े के बाहर की ओर लगाए गए। यहाँ पर ही समधू का तालाब था। श्री सत्‌गुरु जी ज़ब यहाँ आकर ठहरे तो गाँव के लोग आपकी बड़ाई सुनकर आपके दर्शन करने आए। उनमें हिन्दु, सिक्ख, मुस्लमान सभी थे। स. नाहर सिंह एम.ए. अनुसार दर्शनार्थियों ने आपको जो भेंट–रुपये पैसो में की वह सात सौ रुपये थी। इसके साथ बढ़िया बहुमूल्य कपड़े के बारह थान थे।

सच्चे पात्‌शाह जी के पिताजी, बाबा जस्सा सिंह, महल माता जस्सा जी, एवम् सुपुत्री नंदा भी इस मेले के सुअवसर पर सच्चे पात्‌शाह जी के साथ पधारे। सरदार मंगल सिंह बिश्नपुरिया, जिन्होंने सत्‌गुरु जी को बहुत ही बढ़िया चीनी घोड़ी भेंट–स्वरूप दी थी, जिस घोड़ी पर सवारी करने के कारण ही सत्‌गुरु जी को चीनी घोड़ी वाले पात्‌शाह कह कर श्रद्धालु आदर–सत्कार करते थे, वह भी आपके साथ ही थे।

इस मेले पर सूबा साहिबान ने आकर मेले की शोभा को चार–चाँद लगाए। मेले में आए और सूबे निम्नलिखित थे–

सर्वश्री सूबा सुध सिंह, साहिब सिंह, नैणा सिंह, मलूक सिंह, समुंद सिंह, काहन सिंह निहंग, ख़ज़ान सिंह, लक्खा सिंह, जमीयत सिंह, पहाड़ा सिंह तथा जवाहर सिंह जी।

सर्वोपरि सिक्ख इतिहासकार, निर्मले संत, ज्ञानी ज्ञान सिंह जी भी इस मेले में अमृतसर पधारे। सरकार ने चुपके से, गुप्त तौर पर ध्यान रखने के लिए मेले में कुछ अधिकारियों को तैनात किया हुआ था। उन अधिकारियों ने, अमृतसर से, अपने उच्च अधिकारियों को

सूचना भेजी कि २ अक्टूबर १८६७ के मेले समय एकत्रित कूकों की गिनती १२,००० थी। इनके अतिरिक्त तीन–चार हजार कूके टैंटों तथा बुंगों में भी बैठे थे।

पुलिस इन्सपैक्टर, स. नरायण सिंह, सत्गुरु जी का अपनी ओर से विशेष सतर्कता से गुप्त ध्यान रख रहा था। चीनीवाले पात्शाह तो उसकी तथा सरकार के और अधिकारियों की भावनाओं के बारे में पहले से ही सावधान तथा सतर्क थे। आप सरकार को कोई भी ऐसा अवसर नहीं देना चाहते थे जिसको सरकार अवांछित घटना का बहाना बनाकर उनकी ओर उंगली उठा सके। हां सिक्खी, स्वदेशी एवम् असहयोग का प्रचार स्वाभाविक ही हो रहा था।

श्री सत्गुरु सच्चे पात्शाह जी २७ अक्टूबर १८६७ ई. को २–३ सौ सेवकों संग, गुरुधामों पर नमस्कार करने गये। सर्व प्रथम आप २१ थाल प्रसाद तथा ११०० रुपये लेकर अकाल बूंगे गये। पर निहंगों तथा पुजारियों की अपने प्रति प्रतिकूल करनी करके आपने बाहर ही अरदास करके प्रसाद बांट दिया। तत्पश्चात् आप हरिमंदिर साहिब गये। वहां पर आपकी भेंट स्वीकार की गई। प्रसाद स्वीकार कर, अरदास करके आपको सिरोपा भी दिया गया।

आपने इस दीवाली के मेले पर सरदार रत्न सिंह की लड़की बीबी हुक्मी को सूबा नियुक्त किया। वह भविष्य में माई महात्मा करके प्रसिद्ध हुई।

सत्गुरु जी की छत्रछाया में, नामधारी सिक्खों का अवांछित एकत्रित जनसमूह देखकर, एक ओर तो सरकारी कर्मचारी तथा अधिकारी आश्चर्यचकित से हो गये, दूसरी ओर गुरु जी से द्वेष करने वाले ईर्ष्या करने लगे। तीसरा, सच्चे, गुरु–घर के बारे ज्ञान रखने वाले लोग सत्गुरु जी की शरण में आने लगे। अलग–अलग धर्मों के स्थानीय धार्मिक नेता भी आप जी के दर्शनार्थ आने लगे।

कैप्टन मैनजिस ने इस मेले की रिपोर्ट में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए इस प्रकार लिखा है कि "मैंने इससे अधिक शिष्ट, अनुशासित एवम् आज्ञाकारी जन समूह या कम अपराध जितने इस मेले में हुए कभी नहीं देखे।"

२०,००० की इतनी बड़ी गिनती थी साध–संगत की चाहे वह (कैप्टन मैनजिस) उसे जनसमूह समझता है परंतु उसे क्या पता कि सत्‌गुरु जी की उपस्थिति में, उनकी साध–संगत का इकट्‌ठ था। सत्‌गुरु जी की मर्यादा में रह कर ही, अच्छे कर्म करना ही, उनका सर्वप्रथम धर्म था। इसलिए अपराध का अहसास ही कहां रह जाता है?

हां, उसने सरकारी मशीनरी को सावधान करने के लिए एक और महत्वपूर्ण बात अवश्य लिखी थी कि :–

"साहिब सिंह सत्‌गुरु जी का सर्वमान्य उत्तराधिकारी हैं। प्रत्यक्ष रूप में उनको स्वयं सत्‌गुरु राम सिंह से भी अधिक ध्यान से सुना जाता है।"

इसके साथ ही उसने सरकार को खुश करने के लिए, नामधारी पंथ की बदनामी भरे शब्द भी लिखे।

एक बात तो स्पष्ट थी कि इस मेले में आए सेवकों को अपनी संगठनात्मक शक्ति, सत्‌गुरु जी के ही मार्गदर्शन में ही दिखाई दी थी। इससे उनका मनोबल बढ़ा। आम जनता में भी आपके प्रति सद्‌भावना, सहानुभूति तथा विश्वास उत्पन्न हो गया। अमृतसर के सिक्खों की तो बात ही निराली थी। मिस्त्री लहणा सिंह जैसे सिक्खों का तो पाँव ज़मीं पर ही नहीं टिकता था। उन्होंने तो इन दिनों में अपनी 'नाम' की अध्यात्मिक पूँजी एकत्रित की थी। साथ ही उन्होंने राजनैतिक तौर पर भी अपनी शक्ति का मूल्यांकन किया।

मेला समाप्त हुआ, मँगवाया गया सामान तंबू आदि यथास्थान पहुँचाने में मुख्य प्रबंधकों, कार्यकर्ताओं की मदद करके वह अपने

कार्य पर जाने लगे। वधावों वाली गली में उन्होंने अपने नानाजी का एक और मकान तैयार किया जो बाद में उनको ही दे दिया गया। वह शहर से बाहर गाँवों में भी कार्य करने जाते थे। काम करके आते–जाते, मार्ग में उनके कानों में लोगों की बातें सुनाई पड़ती। वह बातें नगर में हो रही गो–हत्या, एवम् गोमांस की बिक्री के संबंध में होती थीं।

ब्रिटिश सरकार की ओर से गो–हत्या के लिए ज़िब्हाखाने खोलने की आज्ञा दे दी गई थी। यदि कहीं चार मुसलमान इकट्ठे होते तो वह इस पर अपनी प्रसन्नता का इज़हार करते। यदि चार हिंदू–सिक्ख इकट्ठे होते तो इस पर अफसोस प्रकट करते परंतु यदि हिंदू–सिक्ख–मुसलमान इकट्ठे मिलकर बैठते तो वह कोई और ही सुर अलापते।

गो–हत्या के विरोधियों को केवल एकमात्र भगवान का ही सहारा था कि उसकी कृपा द्वारा ही यह न देखा जा सकने वाला असहनीय गो–हत्या का दुःख काटा जा सकता है।

मिस्त्री लहणा सिंह जी भी सोचते रहते कि मूक गायों की हत्या, गऊ–गरीब का कष्ट कैसे दूर हो। मिस्त्री जी के जवान होने के बावजूद कुछ लोग उनको आदर करके बाबा जी कहकर बुलाते थे, और बाबा जी बेज़ुबान गायों के कष्ट दूर करने की चिन्ता करते रहते।

# गो-हत्या विषाद

मिस्त्री लहणा सिंह गो–हत्या कारण अमृतसर नगर में बदलती फ़िज़ा का अनुभव कर गंभीर एवम् चिंतित रहने लगे। इस नगर का गो–हत्या से तो किसी समय भी दूर का भी संबंध नहीं रहा था। नगर की स्थापना किसी राजे, महाराजे या अमीर मंत्री ने अपने बढ़े–बूढ़ों, पुरखों की याद में थोड़ा की थी? यहाँ तो अध्यात्मिकता का केंद्र स्थापित किया गया था। इसकी पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक धरोहर की थी। उस धरोहर को स्थापित रखते हुए ही व्यापार आरंभ किया जाता था। इस नगर के इतिहास के साथ लोगों की भावनाओं का बड़ा गहरा संबंध था। यह तो तारीफ़ के काबिल (सिफती का घर) था।

अमृतसर शहर के इतिहास की पृष्ठभूमि श्री सत्गुरु अमरदास जी से संबंध रखती थी। आपकी आज्ञानुसार ही सत्गुरु रामदास जी ने सवंत् १६२१ विक्रमी में तुंग गुम्मटाला एवम् सुल्तान विंड गाँवों के साथ लगती जगह पर सर्वप्रथम पवित्र सरोवर की खुदवाई करवाई थी। इस सरोवर को शहीदों के सिरताज, सत्गुरु अर्जन देव जी ने संवत् १६४५ विक्रमी में पूरा करवाया था। इसी का नाम संतोखसर है।

१६३१ विक्रमी में यहाँ एक गाँव स्थापित किया गया जिसका नाम 'गुरु का चक्क' रखा गया। इस गाँव में सत्गुरु सच्चे पात्शाह एवम् उनके परिवार के लिए बनाए गए निवास स्थान का नाम ही 'गुरु के महल' प्रसिद्ध हुआ। सम्राट अकबर कट्टरवादी तो था ही नहीं। इसलिए वह इस पुण्य–प्रताप वाली गद्दी से बहुत प्रभावित हुआ। उसने सत्गुरु अमर दास जी द्वारा चलाए लँगर में से भोजनरूपी प्रसाद ग्रहण किया। इसलिए उसने सत्गुरु रामदास जी को संवत्

१६३४ में ५०० बीघा ज़मीन दान में दे दी। आप ने उसी वर्ष दुखभंजनी बेरी के पास, एक और सरोवर की खुदवाई शुरु करवा दी। परंतु भाद्र सुदी तीज सवंत् १६३८ को आपके ज्योति ज्योत समाने तक यह कार्य संपूर्ण नहीं हो सका।

पंचम् नानक सत्गुरु अर्जन देव जी ने इस कार्य को पूर्ण करवाया। आपने यहाँ के शहर का नाम भी चौथे पात्शाह के नाम पर ही चक्क रामदासपुरा रखा। इसकी आबादी को बढ़ाने के लिए, सरोवर की कार सेवा करने के लिए, गुरु परिवार के प्रति श्रद्धा, भावना रखने वाले, आदर करने वाले, सेवा भावना से ओत–प्रोत, नेक कमाई करने वाले लोग, व्यापारी इस शहर में बस कर इसकी रौनक बढ़ाने लगे।

१६४३ विक्रमी में सरोवर की खुदाई संपूर्ण होने पर सरोवर को पक्का करवाने के लिए कार सेवा प्रारम्भ हुई। सत्गुरु जी ने इस सरोवर का नाम अमृतसर रखा। यही नाम पूर्णतया शहर के नाम के साथ जुड़ गया।

अमृतसर सरोवर में हरिमंदिर साहिब की सेवा करवाकर, १६६१ विक्रमी (१६०४ ई.) में यहाँ श्री आदि ग्रंथ साहिब का प्रकाश करवाकर सत्गुरु जी ने इसकी महानता को और बढ़ा दिया। यह गुरु मर्यादा के श्रद्धालुओं का सर्वोपरि तथा सर्वोच्च तीर्थ बन गया। संगत आस–पास तथा दूर–दूर से पैदल, बैलगाड़ियों पर, ऊँटों या घोड़ों पर सवार होकर आती, सत्गुरु जी की चरणवंदना करती, शब्द–कीर्तन एवं गुरुवाणी सुनती, अपना लोक–परलोक सँवारने का अहसास लेकर घरों को जाती। वैसाखी पर्व यहाँ बड़ी धूम–धाम से मनाया जाता था।

सत्गुरु हरिगोबिंद साहिब जी के ग्वालियर के किले में से वापस आने के उपलक्ष में, प्रसन्नता के कारण, बाबा बुड्ढा जी ने यहाँ पर दीवाली का मेला मनाना आरंभ किया। इन मेलों पर संगत धूम–धाम

से आती, रुहानी खुराक लेकर जाती। कुछ लोग व्यापारिक दृष्टिकोण से भी आते, वह एक पंथ दो काज़ करके वापस जाते।

सत्गुरु तेग बहादुर जी के कार्यकाल के दौरान यह स्थान धीरे–धीरे मसंदो, पुजारियों की व्यक्तिगत जायदाद का रूप धारण करता गया। इसीलिए जब मार्गशीर्ष(अगहन) की पूर्णिमा को १७२१ विक्रमी को आप अपने जन्म–स्थान, के दर्शनार्थ अमृतसर पधारे तो स्वर्णमंदिर, दरबार साहिब पर अधिपत्य जमाए मसंदों ने, पुजारियों को कह कर वहाँ के दरवाज़े बंद करवा दिए। यहाँ तक कि सत्गुरु तेग बहादुर जी को माथा भी नहीं टेकने दिया गया। सत्गुरु जी, अकाल तख्त के पास एक पेड़ के नीचे बैठकर संगत को दर्शन देकर, औरतों को "मांईयाँ रब्ब रजाईयाँ" का वरदान देकर अगले दौरे पर रवाना हो गए। इस सबके परिणामस्वरूप ही आप कभी भी वहाँ दुबारा नहीं गए।

यद्यपि सत्गुरु गोबिंद सिंह जी ने भी कभी अमृतसर की ओर मुख नहीं किया था परंतु यह तीर्थ स्थान आपके बाद भी आपके अमृतधारी सिक्खों का पूज्यनीय एवम् प्रेरणादायक केंद्र रहा है।

आक्रमणकारी अहमदशाह अब्दाली ने क्रोधवश, उसके नाकों चने चबाने वाले सिक्खों के प्ररेणा–स्रोत धार्मिक–स्थल, हरिमंदिर साहिब को, फाल्गुन १८१८ विक्रमी में बारूद द्वारा उड़ा दिया। यहाँ तक कि उसने सरोवर को भी मिट्टी से भरवा दिया।

१८२१ विक्रमी में सरदार जस्सा सिंह आहलुवालिया के हाथों नींव पत्थर रखवाकर, खालसा पंथ ने देशराज की मारफत इसका पुर्ननिर्माण करवाया।

तेग के धनी, महाराजा रणजीत सिंह ने १८५८ विक्रमी (१८०३ ई.) में अमृतसर जीत लिया था। इससे पहले यह शहर छोटे–छोटे कटड़ों (बड़े भवनों) में विभाजित था। अलग–अलग मिसलों के सरदार इन

कटड़ों (बड़े भवनों) के मालिक थे। मुख्य कटड़े इस प्रकार थे – कटड़ा कन्हैया, कटड़ा जैमल सिंह, कटड़ा भंगीयाँ, कटड़ा रामगढ़िया, एवम् कटड़ा आहलूवालिया। कटड़ों तथा मिसलों के सरदारों ने अमृतसर विशेषतया हरिमंदिर साहिब के चारों ओर को सजाने, सँवारने, श्रृंगारने के लिए और रौनक बढ़ाने के लिए सड़कें, बुंगे एवम् बाज़ार बनवाए। महाराजा रणजीत सिंह ने इस शहर को और अधिक प्रसिद्धि दिलवाने के लिए बड़ी गंभीरता से विचार किया। उसने इसको धार्मिक, सांस्कृतिक एवम् व्यापारिक केंद्र बनाने के लिए कदम उठाए। उसने लाहौर के अनेक गणमान्य व्यक्तियों को अमृतसर शहर में बसने तथा काम करने के लिए प्रेरित किया।

महाराजा ने मारवाड़ी लोगों को उत्साहित किया। सेठ राधा कृष्ण एवम् पद्म प्रकाश महेश्वरी जैसे प्रसिद्ध व्यापारी यहाँ आकर बस गए।

महाराजा रणजीत सिंह ने हरिमंदिर साहिब की सेवा बड़े दिल से करवाई। उसने इस पवित्र स्थान की आकर्षक सज्जा को दिखाने के लिए, कलात्मक ढंग से, बाहरी अद्वितीय झाँकी प्रस्तुत करने के लिए, इसके सुनहरीकरण के आदेश दे दिए। इस कार्य को करने के लिए धन और निपुण कारीगरों की आवश्यकता थी। बादशाह को पैसे, का अभाव तो हो ही नहीं सकता था। इसलिए उसने इस पवित्र धार्मिक स्थल के नव–निर्माण के लिए ५ लाख रुपए की सहायता दी। जहाँ कलात्मक निपुणता वाले कारीगरों का प्रश्न था उनकी कला का मूल्य भी कोई राजा–महाराजा ही चुका सकता था। इसलिए हरिमंदिर साहिब में कलात्मक निखार लाने हेतु चनिओट (पाकिस्तान) से मुसलमान आर्कीटैक्ट, राजमिस्त्री एवम् लकड़ी पर नक्काशी का काम करने वाले नक्काश बुलाकर काम पर लगाए गए। यार मुहम्मद खां जैसे विशेषज्ञ मिस्त्री इसको सुनहरी करने के लिए नियुक्त किए गए। सर्वोपरि नक़्क़ाशी एवम् जड़तकारी का मुख्य कलाकार बदरू मोहिउद्दीन था।

मुसलमान कारीगरों के वापस जाने के पश्चात् एवम् महाराजा रणजीत सिंह की आँखें मूँद लेने के बाद इस काम को भगवान सिंह ज़मादार, मंगल सिंह रामगढ़िया एवम् कल्याण सिंह राय बहादुर ने कराया। उन्होंने और कारीगरों की मदद तो लेनी ही थी, इसलिए मदद ली।

शेर–ए–पंजाब, महाराजा रणजीत सिंह ने अपने समय में ही देहली, जोधपुर तथा सभी पर्वतीय इलाकों के कारीगरों, सुनारों, चित्रकारों तथा कलाकारों को अमृतसर में बसाया था। उनमें से परखू जीवन राम एवम् हसन–अल–दीन का नाम तो इतिहास में विशेषरूप से मिलता है।

राजस्थान, देहली तथा हिमाचल प्रदेश के लोगों द्वारा यहाँ पर आकर बसने से उनका रहन–सहन, संस्कृति, लोक–विरासत एवम् खान–पान के रंग–ढंग भी साथ आए।

इस प्रकार अमृतसर आकर बसने वाले लोग अपने साथ सब कुछ लाये। महाराजा के अपने दरबारियों तथा और गणमान्य व्यक्तियों ने भी इधर मुँह कर लिया। उन्होंने यहाँ पर अपनी हवेलियाँ बनवाई, महंतों के अखाड़े स्थापित किए। मंदिर, मस्जिद, धर्मशालाएँ तथा बुर्जों का निर्माण किया गया। शहर लोगों के आने–जाने तथा व्यापार का केंद्र बन गया परंतु किसी को भी इसे पतित करने की आज्ञा नहीं थी। धार्मिक पवित्रता का पूरा ध्यान रखना पड़ता था।

महाराजा रणजीत सिंह के समय केवल अमृतसर में ही नहीं बल्कि उसके पूरे राज्य में गऊ–गरीब की रक्षा के प्रति विशेष सतर्कता बरती जाती थी। उसने जब अपने दरबार में यूरोप के लोगों की नियुक्ति की तो उनके सामने तीन शर्तें रखी :–

अ. वह गाय मांस न खाते हों।

ब. वह सिगरेट न पीते हों।

स. वह दाढ़ी रखते हों।

उपरोक्त तीनों शर्तो को मानने वाले ही पंजाब में नौकरी कर सकते थे और कर सके।

विदेशी फौजी भी, महाराज रणजीत सिंह की सरहद में से गुजरते समय, गौ–हत्या नहीं कर सकते थे। अफगानिस्तान के हाकम शाह सुजाओ मुल्क तथा अंग्रेज हाकम ने महाराजे के साथ वायदा किया था कि यदि उनकी फौज कभी भी उसके राज्य में से गुजरेगी तो गौ–हत्या नहीं करेंगी।

महाराजा रणजीत सिंह के राज्य में गो–हत्या करने वाले के लिए मौत की सजा निश्चित की गई थी।

उस, शेर–ए–पंजाब के आंखें बंद करते ही सिक्ख राज्य पतन के गर्त में जाने लगा। जिसके शासनकाल में गो–हत्या के बिना किसी और अपराध के बदले किसी को मौत की सजा नहीं दी जाती थी, उसके दरबार में नित्यप्रति मारकाट होने लगी। अंग्रेज ने भी पहले किए सारे समझौते ताक पर रखकर, बड़ी चतुराई से, प्रशासन में हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। खालसा दरबार में महाराजे, प्रधानमंत्री खुले आम कत्ल होने लगे। पंजाब का दर्द रखने वाला शाह मुहम्मद पुकार उठा,

पिच्छे इक सरकार दे खेड चली,
पई नित हुंदी मारो मार मीआं।
सिंघां, मार सरदारां दा नास कीता,
सभो कत्ल कीते वारो वार मीआं।

ऐसा वातावरण बन चुका था कि सिक्खों तथा अंग्रेजों के युद्ध हुए मुदकी, फेरू शहर, बद्दोवाल, अलीवाल तथा अंत में सम्भरांवा के मैदान में खूब तलवारें चली, खंडा खड़का। दुर्भाग्य पंजाब का कि अपने नेताओं की गद्दारी कारण, "फौजां जित्त के अंत नू हारियां ने।" देश भक्त शूरवीर इन युद्धों में खेत रहे यां पहले ही नौकरी छोड़ गए। नाबालिग महाराजा दलीप सिंह के बस में तो था ही क्या?

उस बेचारे को बेबस होकर अंग्रेजों की शर्तों तथा उनके साथ हुए समझौते को स्वीकार करना पड़ा।

६ मार्च १८४६ ई. को लाहौर, एक संधि पर हस्ताक्षर हुए। उसकी १६ धाराएं थी। इस संधि के अनुसार कहने को तो महाराजा दलीप सिंह तथा अंग्रेज सरकार में आपसी शांति तथा मित्रता रखने का प्रण किया गया परंतु इसके साथ ही महाराजा को अंग्रेजों को इलाका देने, जंगी खर्चा देने, सीमित फौज रखने की बात भी थी तथा बिना ब्रिटिश हकूमत की आज्ञा, यूरोपीय तथा अमरीकी दरबारी रखने पर पाबंदी थी।

सर हैनरी लारेंस को रैजीडैंट नियुक्त करके अंग्रेज प्रशासन ने उसके डेरे लाहौर डलवा दिए। इसने सरकारी आज्ञा के अनुसार, अपनी सूझ–बूझ का प्रयोग करके पांव पसारने आरंभ कर दिए।

राजनैतिक आधार पर वह (अंग्रेज) समस्त पंजाब पर अपना प्रभुत्व समझता था। पंजाब को अपनी मुट्ठी में समझता था। धार्मिक हस्तक्षेप के लिए वह एक अनोखी चाल चलने लगा। उसने अपना ध्यान अमृतसर पर ही केंद्रित कर लिया। इस शहर की पवित्रता कायम रखने के लिए २४ मार्च १८४७ को निम्नलिखित आदेश जारी किया गया।

> "अमृतसर के पुजारियों द्वारा परेशानी की शिकायत किए जाने पर लोगों को गवर्नर जनरल के आदेशानुसार बताया जाता है कि अंग्रेज़ शासन अधीन लोगों को मंदिर, (जिसको दरबार साहिब कहा जाता है) या इसके चारों ओर, आस–पास अमृतसर में या किसी मंदिर, गुरुद्वारे में जूतों सहित जाने की रोक लगाई जाती है।
>
> अमृतसर में गो–वध नहीं किया जाएगा। ना ही सिक्खों को किसी भी प्रकार से सताया जाएगा या उनकी किसी मर्यादा में हस्ताक्षेप किया जाएगा।

सरोवर के कोने तथा बूंगे में जूते उतारे जाएँगे। कोई भी आदमी जूतों सहित सरोवर की परिक्रमा नहीं करेगा।

लाहौर — हस्ताक्षर

२४ मार्च, १८४७ — (हैनरी एम. लारेंस)

रेज़ीडैंट

उपरिलिखित आदेश को ताँबे के पत्तरों पर उकरकर हरिमंदिर साहिब के मुख्य द्वार पर, सामने टाँग दिया गया। वैसे देखा जाए तो सदियों से, कई पीढ़ियों से यहाँ बसे हुए पंजाबियों को इस आदेश की क्या आवश्यकता थी? वह चाहे हिंदू थे या मुसलमान, वह सिक्ख मर्यादा से भलीभाँति परिचित थे। भला उन्होंने सिक्ख मर्यादा का उल्लंघन क्यों करना था? किसी के भी जूते पहन कर हरिमंदिर साहिब या किसी और पावन–पवित्र धार्मिक स्थान पर जाने का प्रश्न ही कहाँ उठता था? केवल पवित्रता के लिए ही नहीं, सफाई को ध्यान में रखकर भी इस आदेश का पालन किया जाता था।

गो–वध के बारे में भी पंजाबियों की अपने पाँव पर आप कुल्हाड़ी मारने वाली बात थी। इसलिए वह क्यों करते? हिंदू–सिक्ख तो एक जान थे। वह सांझी धार्मिक विरासत के मालिक थे। गुरु साहिबान ने अपनी वाणी में उपनिष्दों की भी व्याख्या की है। अपनी विरासत के अनुसार वह गाय का आदर भी करते थे। मुसलमान भी उनकी भावनाओं को कभी ठेस नहीं पहुँचाना चाहते थे। वैसे भी सिक्ख मिसलों के समय से ही पंजाब में गो–हत्या पर पूर्णतया प्रतिबंध था।

अब प्रश्न यह उठता है कि लारेंस के इस आदेश की आवश्यकता क्यों पड़ी? हरिमंदिर साहिब में जोड़े (जूते) पहनकर जाने जैसा जघन्य अपराध कौन करता था? गो–वध कौन करता था? किसकी आज्ञा एवम् शह पर यह होता था।

निस्संदेह सभी कुछ बड़ी सोची समझी चाल, योजनानुसार हो रहा था। दलीप सिंह तो नाम का ही महाराजा था। हुक्म लारेंस का

ही चलता था। उसने न्यायालय स्थापित किए जिनके जज अंग्रेज़ थे। इतना ही नहीं उसने अंग्रेज़ फौज़ भी रखी हुई थी। यह फौज़ी ही हरिमंदिर साहिब में जाते समय वहां की मर्यादा का उल्लंघन करते थे वे ही गाय का माँस खाने के लिए गो–हत्या करते थे। परिणामस्वरूप लोगों के हृदयों में गोरों के प्रति द्वेष, घृणा उत्पन्न होने लगी। इस पैदा हो रही दुर्भावना के आँसू पोंछने के लिए ही यह आदेश जारी किया गया था। लाहौर दरबार पर प्रशासन महाराजा दलीप सिंह का था, आज्ञा फिरंगी की!

गो–वध पर उसने पूर्णतया रोक नहीं लगानी थी। वह जानता था की भारतीय नस्ल एवम् धर्म के लोगों की गऊ प्रति भावनात्मक सांझ है। वह उसे माता कहकर पूजते है। इसका उनकी आर्थिकता में भी महत्वपूर्ण योगदान है। खाद्य पदार्थों में गाय का दूध, दही एवम् उससे बनने वाले और पदार्थों से अधिक स्वास्थ्यवर्धक और कोई खुराक नहीं है जो शारीरिक एवम् दिमागी शक्ति को बढ़ाती है। गो–मूत्र एवम् गोबर भी अपवित्र नहीं माने जाते हैं। वह दवाईयों में तथा खाना बनाने वाले चौके को पवित्र करने के लिए प्रयोग में लाए जाते है। खेतों के लिए बहुमूल्य खुराक खाद तो बनती ही गोबर से है या कूड़े–कर्कट से। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में गाय का सम्माननीय स्थान था। इसकी हत्या करना धार्मिक रूप से पतित होना था। हिंदुशास्त्र भी गो–वध करने वाले को नर्क का भागी मानते हैं।

मुसलमान आपसी भाईचारे में किसी प्रकार की दरार नहीं पड़ने देना चाहते थे। इसलिए हैनरी लारेंस का यह आदेश कि अमृतसर में गो–वध नहीं होगा, अंग्रेज़ों के लिए ही था पर इसके पीछे भावना तो हिंदू–सिक्खों के स्वाभिमान को ठेस लगाने तथा चुनौती देने की थी।

अंग्रेज़ों को भारतीय भावनाओं से क्या लगाव था बल्कि वह तो खिलवाड़ कर रहे थे। दूसरी ओर, उसका शासन करने का उद्देश्य

व्यापार ही था। उसके लिए भारतीय नस्ल, भाषा एवं संस्कृति के कोई अर्थ नहीं थे बल्कि सब कुछ के पीछे दुर्भावना ही थी। गो–वध के पीछे भी लोगों में फूट डालना, दरार डालना एवं व्यापारिक दृष्टिकोण ही था। गोमांस महँगा बिकता था। अंग्रेज़ व्यापारी ने जूते बनाने के लिए केवल मृतक गाय की ही खाल नहीं उतारनी चाही बल्कि जीवित गाय को तश्दद देकर उसके गर्भ में पल रहे बछड़े या बछड़ी को मार कर उसकी खाल भी प्रयोग की। गाय की हड्डियाँ बेच कर उसने धनोपार्जन आरंभ कर दिया।

उसने अपनी राजनैतिक शक्ति का दुरुपयोग किया तथा बेगाने देश में वहां के लोगों की धार्मिक मर्यादा से मुँह मोड़कर गो–वध की स्वतंत्रता प्राप्त कर ली।

२६ मार्च १८४६ को तो पासा ही पलट गया। सिक्ख राज्य पर वज्रपात हुआ। दूसरा हिंद–पंजाब युद्ध हारने पर, महाराजा दलीप सिंह के पंजाब को ब्रिटिश साम्रज्य का एक अभिन्न अंग बना दिया गया। लार्ड डलहौजी ने सिक्ख पलटनों को खत्म कर दिया। फौज़ियों से हथियार फेंकवा लिए गए। पंजाबी, सब कुछ जानते–समझते हुए, अपना बस न चलता देख उदास, विक्षुब्ध तथा उद्विग्न रहने लगे। अब अंग्रेज़ों का अपना राज्य था। गुरुद्वारों पर भी उसने अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था।

अंग्रेज़ चालाक, चतुर शासक था। उसने लोगों की सोच को अपनी ओर से हटाने के लिए उनको आपस में लड़ाने का मार्ग निकाल लिया। हिंदू–सिक्खों को अलग, मुसलमानों को अलग करने के लिए उनमें फूट डलवाने का काम आरंभ कर दिया गया। उसने बड़ी चतुराई से योजना बनाई। इसका प्रथम कदम था पंजाब के प्रशासनिक बोर्ड की ५ मई १८४६ ई. को चिट्ठी नंबर तीन। इस पत्र के अनुसार यहाँ के निवासियों को गोमांस खाने एवम् गो–वध करने की छूट दे दी गई। यह आदेश डिप्टी कमिश्नर को भेज दिया गया।

उसका यह आदेश सरकार–भक्त–गणमान्य, व्यक्तियों, द्वारा लोगों तक पहुँचाया गया।

परंतु इसके साथ ही यह निर्देश भी दे दिए गये कि ज़िब्हाखाने शहर से बाहर खोले जाएँगे। गोमांस की भी शहरों में साधारण दुकानें लगाकर बेचने की छूट नहीं होगी। न ही सब्जी की भाँति आवाज़ें लगा कर गली–गली, खुला बेचे जाने की छूट होगी। ऐसा करने का कारण हिंदू–सिक्खों के धर्म का ध्यान रखना बताया गया था।

परंतु यह सब तो आँखों में धूल झोंकने के लिए किया गया था। धीरे–धीरे वास्तविकता प्रकट होती गई। पहले आदेश के बारे में अभी पूरी बातचीत भी नहीं हो पाई थी कि २० मई १८४६ ई. को गवर्नर जनरल ने एक और आदेश भेजा। इस आदेश के अनुसार, "जिस रीति–रिवाज़ को करने की आज्ञा पड़ोसी का धर्म देता है उसमें किसी को भी हस्तक्षेप करने की आज्ञा नहीं होगी।"

मुसलमान एवम् ईसाई धर्मों के रीति–रिवाज़ तो गोमांस खाने की आज्ञा देते थे। ईसा मसीह के अनुयायी, फिरंगी की सरकार के इस आदेश के कारण मुसलमानों के तो पाँव ही ज़मी पर नहीं टिक रहे थे। परिणामस्वरूप उनकी हिंदू–सिक्खों से संबंधों में दरार पड़ने लगी। इसको प्रशासकों ने अपनी फूट डालने वाली नीति की सफलता के मार्ग की ओर बढ़ता पहला कदम समझा।

उपरोक्त आदेश तो गो–हत्या को कानूनीरूप के लिए मान्यता देने के लिए जारी किया गया था। प्रबंधकी बोर्ड, पहले भेजी गई आज्ञा को ही कानूनी घेरे में लाया। इसमें दोनों बातें कानूनी थी।

१. गाएँ शहर से बाहर एक निश्चित स्थान पर ही ज़िब्हा की जाएगी।

२. खुले आम गोमांस बेचने के लिए किसी शहर में कोई दुकान नहीं खोली जाएगी।

यह वज्रपात अमृतसर शहर पर भी हुआ परंतु अभी थोड़ा–सा बचाव हो गया। आख़िरकार, अमृतसर सिफती का घर था। व्यापारिक केंद्र था, आपसी भातृभाव की भावना का आदर करने हेतु हिंदू–सिक्खों के दिलों को ठेस न पहुँचाने की भावना के कारण किसी मुसलमान ने यहाँ पर कत्लगाह नहीं खोली।

डिप्टी कमिश्नर एम. सी. सांडरस ने कत्लगाह न खुलना, सरकारी नीति का विरोध महसूस किया। उसने उसी समय राय तख्त मल्ल एवम् गणमान्य हिंदुओं को बुलाया। उनसे शहर से बाहर ज़िब्हाखाना खुलवाने की हां करवा ली। स्वीकृति क्या थी? उपस्थित सज्जनों ने अपनी सरकार भक्ति का प्रमाण देते हुए हां में हां मिलाई।

परिणामस्वरूप सांडरस ने मुसलमानों को मज़बूर करके, लाहौरी दरवाज़े के बाहर स्थान निश्चित करके, सरकारी शर्तों के अंर्तगत ज़िब्हाखाना खुलवा दिया।

दूसरे शहरों में भी ज़िब्हाखाना खुलने की खबर फैल गई। व्यवहारिक रूप में छोटे–बड़े शहरों में गाय कत्ल होने लगी। गोमांस बिकने लगा। परिणामस्वरूप आपसी संबंधों में फीकेपन का आभास सा होने लगा। आपसी मेल–जोल प्रायः बंद होता ही लगा।

अमृतसर में हिंदू एवम् मुसलमानों की आबादी लगभग पचास–पचास प्रतिशत थी। सिक्ख तो आटे में नमक के बराबर ही थे। उनमें से भी व्यापारी अल्प संख्या में थे। आस–पास दुकानदार राज–मिस्त्री, बढई, लोहार आकर बस गए थे। कुछ अरोड़ा जाति के लोग थे। कुछ गुरुद्वारों के सेवादार, पुजारी तथा निहंग भी गुरुनगरी में निवास कर रहे थे।

अमृतसर में गो–वध की स्वतंत्रता मिलने के कारण मुसलमानों को इसकी कानूनी तौर पर स्वीकृति मिल गई। उन्होंने गो–वध अपना अधिकार समझ लिया। दिनों में ही पुराने भातृभाव–संबंध हवा में पंख लगाकर उड़ते हुए प्रतीत होने लगे। उनके घरों में गोमांस बनने

पकने लगा, खाया जाने लगा। उसकी दुर्गंध वातावरण को प्रदूषित करने लगी जिससे हिंदुओं का व्यवहार भी पहले जैसे न रहा। यद्यपि कानून की खिलाफत के डर से सभी मुंह बंद किए हुए थे।

इलाके में गायों की संख्या कम होने लगी। फलस्वरूप दूध, घी तथा इनसे बनने वाले पदार्थ भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। बछड़ों तथा सांडों की कमी के कारण बैल भी कम होने लगे। जिससे कृषि पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव दिखाई देने लगा।

अमृतसर कच्चे चमड़े के व्यापार का केंद्र बनने लगा। इस व्यापार के और प्रसार के लिए लंदन से व्यापारिक कंपनी के एजेंट आए। उन्होंने कसाइयों को बढ़िया गायों, बछड़ियों व बछड़ों की खाल का अधिक मूल्य देने का लालच दिया। व्यापारी तो लाभ के प्रति ही आकर्षित होता है। मुसलमान व्यापारियों की पांचों उंगलियां घी में हो गई। उन्होंने कंपनी के एजेंटों संग सांठ–गांठ कर ली। इसलिए उन्होंने कसाइयों से और उत्तम नस्ल के स्वस्थ बछड़े – बछड़ियों को ज़िब्हा करवाना प्रारंभ कर दिया। उनकी खाल को विदेश भेजकर खूब धनोपार्जन किया जाने लगा।

गायों की बढ़ रही हत्या ने भोले–भाले धार्मिक व्यक्तियों के हृदयों को ठेस लगाई, चोट पहुंचाई। परंतु वह यह समझने में असमर्थ थे कि अपनी फरियाद, किसको सुनाएं। अमीर लोग हिंदू–सिक्ख तो जागीरें लेकर अपनी ज़मीर गिरवी रखे हुए थे। उनको किसी की धार्मिक भावना से क्या सरोकार था? उनका अपना धर्म तो हाकिम की जी हजूरी करके उसकी ख़ुशनूदी प्राप्त करना ही था। वे अपनी जागीरों, महाजनी कार्य एवम् व्यापार की सलामती के लिए अपने आका को प्रसन्न रखने में लगे हुए थे।

तथाकथित धार्मिक नेताओं का धर्म तो जन–साधारण की भावनाओं के संग खिलवाड़ करना था। धार्मिक स्थानों पर भी उनका संबंध धार्मिक मर्यादा न होकर श्रद्धालुओं की पूजा–भेंट से

ही था इसलिए महंत तथा गुरुद्वारों के पुजारी चुप्पी साधे एश्वर्य का जीवन बिता रहे थे।

पंजाब तथा पंजाबीयत का दर्द महसूस करने वाले नेताओं को पहले ही अंग्रेज़ शासकों ने वतन से बे–वतन कर दिया था या जेलों में बंद कर दिया था। दीवान मूलराज जो सिक्ख शासन के समय मुलतान का गवर्नर हुआ करता था, १८५० ई. में कलकत्ता की जेल में प्राण त्याग चुका था। राजा शेर सिंह अटारी वाला, राजा चतर सिंह तथा दीवान बूटा सिंह आदि भी जेल की सीखचों के पीछे जीवन के दिन गिन रहे थे। पंजाब का महाराजा दलीप सिंह अपनी जन्म भूमि ही नहीं अपने धर्म एवम् संस्कृति से भी कोसों दूर जा चुका था। वह १८ मार्च १८५३ ई. को ईसाई धर्म का अनुयायी बना दिया गया था। १६ अप्रैल १८५४ ई. को वह इंग्लैंड जाकर एलवर्ड में रहने लगा था। भाई महाराज सिंह को भी सरकार ने बागी करार कर दिया था। गो–हत्या के खिलाफ आह का नारा किसने लगाना था?

यद्यपि सरकार को कोई कुछ नहीं कह रहा था परंतु आपसी लड़ाई–झगड़े आरंभ हो गए थे। केवल गाली–गलौच ही नहीं, हाथा–पाई भी हो रही थी। ब्रिटिश सरकार का बीजा हुआ, फूट का बीज, गो–रक्त से सींचे जाने के कारण विषैले पौंधों का रूप धारण कर रहा था। हिंदू–मुस्लिम फसादों के मुकदमें न्यायालयों में जा चुके थे। उदाहरण के लिए कुछ मुकद्दमे इस प्रकार थे –

१. २० मई, १८४६ ई. को डिप्टी कमिश्नर के सामने प्रस्तुत हुआ मुकदमा।
२. २७ मई, १८५६ ई. को एफ. कपूर के समक्ष गलियों में घूम–घूमकर, आवाज़ें लगा–लगा कर मांस बेचता दोषी पेश किया गया।
३. २८ मई, १८६३ ई. को मेज़र मरसर के न्यायालय में, उस रंगे हाथों पकड़े गए दोषी को पेश किया गया जो हिंदू बहुसंख्या वाली गलियों में आवाज़ें लगा कर गोमांस बेच रहा था।

४. नवम्बर १८६४ ई. में डी. मैकनब की कचहरी में भी मुकदमे पेश होने का पता लगता है।

एक मुकदमा मई, १८६३ ई. में भी हुआ। उसके मुज़रिम पर केस था कि वह हिंदू बहुसंख्या वाली गलियों में घूम–फिर कर गौ मांस बेचता रहा था। मुकदमा दो ऑनरेरी मजिस्ट्रेटों के ही सुपुर्द कर दिया गया। उनमें से एक हिंदू था, दूसरा मुसलमान। उन्होंने एकमत होकर गवाहियों के आधार पर उसको अपराधी करार दिया। उसको तीन माह की कैद की सजा दी गई तथा पचास रुपए जुर्माना भी किया गया। उसने अपील की। जूडीशियल कमिश्नर ने गौर फर्माया। उसने यह कहते हुए कि सरकारी रिकार्ड में घूम–फिर कर मांस बेचने के विरुद्ध कोई आदेश नहीं है – उसको बरी कर दिया। कसाइयों के पौं–बारह हो गए। गोमांस गलियों में खुलेआम बिकने लगा। न्यायालय में लोग कम ही जाते थे इसलिए बहुत कम संख्या में केस दर्ज हुए क्योंकि निर्णय लगभग पहले से ही सबको ज्ञात होते थे।

मुसलमान त्योहारों पर ही नहीं अब तो धीरे–धीरे वैसाखी, दीवाली, होली पर भी आम से अधिक गो–घात किया जाने लगा। बढ़ती बिक्री से अमृतसर की नगरपालिका ने भी लाभ उठाना आरंभ कर दिया। उसने १८६६ ई. में पशु के कटे हुए सिर पर आठ आने कर लगा दिया। इससे उसकी आय में वृद्धि हो गई।

अमृतसर के बदलते वातावरण को एम.एम. आहलूवालिया ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

भोले–भाले, अनपढ़ एवम् धार्मिक सोच वाले पंजाब के लोगों ने पवित्र नगर अमृतसर में भद्देपन एवम् उसके हुए नुकसान की एक ऐसी तस्वीर देखी जो कि लाहौर में महाराजा रणजीत सिंह एवम् उसके उत्तराधिकारियों के राज्य प्रबंध के समय से पूर्णतया भिन्न थी। अमृतसर में दो कत्लगाहें थी एक छावनी के इलाकें में तथा दूसरी लाहौरी गेट के बाहर – **कूकाज़**

१८७१ ई. में आपसी तनाव और बढ़ गया, कारण एक बूच्चड़खाना घंटाघर वाली जगह पर भी खोल दिया गया। इस बात की किसी ने परवाह नहीं की कि इसकी पूर्व दिशा वाली सीमा हरिमंदिर साहिब की दीवार के साथ सांझी थी।

इस बूच्चड़खाने ने श्रद्धालुओं की चिंता बढ़ा दी परंतु मुसलमान शेखी बघारने लगे। एक सिक्ख राजा सिंह (तराड़ी) ने किस प्रकार जगह–जगह जाकर इसके खिलाफ सहायता मांगी, के बारे में संत संतोख सिंह बाहुवाल ने पंजाबी में लिखा है :

अमृतसर दे तुर्कां ने अर्जी दित्ती कि ठेका असी ज़ियादा भर देवांगे, बूच्चड़खाना शहर में लेंगे। निहंगां पुजारियां ते होर जो हिंदू है सब को फिकर होइया कि सर्ब का धाम है, हिंदुओं का अर खालसे का। जेकर बूच्चड़खाना शहर विच लगा गया तां बड़ा भारी पाप होउ। शंकर बरन हो जावेगी। गउ बध का पाप बड्डा है क्योंकि गउ में गुण वड्डे हैं। सो गउ की रच्छिया के वास्ते खालसे में गल्लां हो रहीयां हैं। जेकर अमृतसर के बीच बूच्चड़खाना लग्गा तां बड़ा भारी पाप है। सरब खालसे का गुरुदुआरा है। बारहवां गुरु भी प्रकट होया है संत खालसा भी होया है। दसवें पात्शाह का बचन होया है 'गउअन रच्छ करेंगे भारी' सो समा हुण आया है।

राजा सिंह तरांडी दा, तिसने पहले अमृतसर वाले हिंदुआं नू कहिया कि शहर के बीच बूच्चड़खाना लगता है। तुसी मदद दिओ जो बूच्चड़ा नू वढ्ढ़ दईए। मुकर गये। जी सानू कोई नहीं फुरदी है। तुसी जिवें मरजी है तिवें करो। फेर हिंदुआं ने रल मिल के अंग्रेजां दे अर्जी पाई कि बूच्चड़खाना शहर दे विच न लग्गे। जे शहर विच लग्गा तां फसाद होवेगा। सर्ब हिंदुआं का असथान है। राजा सिंह फेर राजियां कोल गया। कहा कि गुरुदुआरे कोल बूच्चड़खाना लावण लग्गे हैं। शहर में गो–बध होण लग्गा है। तुसी कहो जो बूच्चड़खाना न लग्गे। अमृतसर जी में सर्ब राजा प्रजा का गुरुदुआरा है। राजियां

ने कहा कि असीं अंग्रेज के राज में कुछ नहीं कह सकदे हैं क्योंकि अहदनामा लिख के दित्ता होया है कुछ करन ओह साडा दखल नहीं है। पटियाला, नाभा, संगरूर, फरीदकोट, कपूरथला, सारियां कोल गये। सारियां राजियां ने एहो उत्तर दित्ता। फेर पुजारियां नू पुच्छिया कि तुसी धर्म हेत मदद दिओ जो बूच्चड़खाना न लग्गे अमृतसर जी में। पुजारीयां ने भी जवाब दे दित्ता कि सानू भी कुझ नहीं फुरदी है। निहंगा कोल वी गये। जाइ के बोला कीता तुसी कोई मदद दिओ जो शहर में बूच्चड़खाना ना लग्गे। किहा साडी कोई भी रै नहीं है। असी कुछ भी नहीं कर सकदे हैं। फेर निर्मलियां नू जाइ के पूच्छिया कि धर्म हेत तुसी मदद दिओ जो शहर में बूच्चड़खाना न लग्गे। निर्मलियां ने किहा कि गउ मारन वाला तो गउ रक्खण वाला सानू इको जिहे ही भासदे हैन।

एक दिन कस्सियां लजाइ के बूच्चड़ा के घर कस्सियां नाल ढावण लग्गे। पुलिस ने फड़ के हवालात जाइ दित्ते। दो दो महीने हवालात रक्खे फेर जमानता लै के छड्डे।

अट्ठां दिनां बाद दरबार के बीच एक तुर्क ने हड्डी लियाइ धरी। पुजारी ने समझिया कि चांदी दी डली है। झट–फड़ी हत्थ में, देखे तो हड्डी है। जिसने धरी उसनू कुट्टण लग्गे। कुट्टदे–कुट्टदे कुतवाली नू लै गये। एक तुर्क ने कहा कि ऐनू कानू मारदे हो। ज्ञानियां वाले खूह में करंग पिया है गउ दा। उसको फड़ लीया। ज्ञानियां के खूह विच्चों हड्ड कढिया। तीन–तीन बरस की कैद कीती दोहां को।

अट्ठवे दिन कश्मीरियां ने मिलके सलाह कीती जो हिंदू तां जित्त गये हैन। पंजाह कू तुर्क मिलके हलवाई दी हट्टी आए बैठे। तुर्क उसनू कहण लग्गे कि हल्वा दिओ। दे दीआ। होर मंगिआ। होर दे दीआ। फेर मंगिया फेर दीआ। जां चौथी फेरी मंगिया तां हलवाई ने किहा कि तुसी मुल्ल लैण आए हो कि ऐंवे मंगण आए हो। तुर्का ने खूबचे के बीच सुट्टियां हल्वा जूठा। लड़ाई मच गई। मुसलमानां

नू खतरीयां ने बहुत मारिया। एक हौलदार छुड़ावण लग्गे कि अक्ख काणी हो गई। उस वक्त एह भासदी सी कि शहर बिगड़ जावेगा। दुहां धिरां की अर्जी पई। कुछ तां बड्डे–बड्डे कैद कीते, कईयां नू जुर्माना करके छड्ड दित्ता।

फरंगी ने किहा कि बूच्चड़खाना यहां ही रहेगा। ये नहीं हटेगा। घंटेघर दे चड़हदे पासे बूच्चड़खाना बणिया सी परिक्रमा दे नाल। निहंगा ने सलाह कीती मरना इक वेरी है, चलो मरां मारांगे। शहर में नहीं विकण देणा है मास। जां निहंग अरदासा करके चड़े तां तत्काल फिरंगी उनको कुतवाली लै गये। बंद करके कहा कि हुण करो दंगा किवें करदे हो।

राजा सिंह श्री अमृतसर जी से आया। अरज कीती सत्गुरु जी के हजूर जी खतरी ब्राह्मण तुहाडे वल्ल देखदे हैं। बूच्चड़खाने सब शहरां में लगाय लऐ हैं। तुर्का ने फिरंगीयों नाल मिलके। अग्गे बाहर होइके बाहर ही बेचदे से मास। हुण विच शहर में बेची जांदे हैं। पहले गुउआं को मत्थे विच गोली मारदे हैं। गउ डिग पैंदी हैं तो छुरी पकड़कर गर्दन विच फेरदे हैं। सुणके एह त्रास झल्लिया नहीं जांदा है। पंजाब धरती में बड़ा पाप होण लग्गा है। एह कद हटूंगा। दोनों हत्थ मल के दीन दयाल जी बचन कीता जद पृथी पर लोहे के पट मिल उनगे तद हटेगा इह त्रास। समें–समें नाल सब कुछ हो जावेगा।"

**— सत्गुरु बिलास**

१८७१ ई. में आपसी तनाव और भी बढ़ गया। इसका कारण था गो–हत्या के लिए एक ज़िब्हाखाना घंटाघर वाली जगह शहर में ही खोल दिया गया। इस बात की किसी ने कतई परवाह नहीं की कि उसकी पूर्व दिशा वाली भुजा हरिमंदिर साहिब की दीवार के साथ ही लगती थी।

यह ज़िब्हाखाना खुलने से हरिमंदिर साहिब की पवित्रता भी भंग होने लगी। जब चील, कौए और मांसाहारी पक्षी उड़ते, उनकी चोंचों

तथा पँजों में मांस के छिछरे, बोटियां या हड्डियां होती। जब वह दरबार साहिब के ऊपर से उड़ते तो वहां परिक्रमा या सरोवर में मांस के टुकड़े गिरते। कई बार कलशों पर बैठे मांस नोचते पक्षियों को माथा टेकने आए लोग उड़ाते। उनका अपना मन भी दुखी होता परंतु कौन वीर प्रकट होता जो गो–रक्षा या गुरुधामों की पवित्रता का बीड़ा उठाता। महंतों तथा पुजारियों की पूजा के धन ने मति मलीन कर दी, बुद्धि ही भ्रष्ट कर दी थी। सरदार नाहर सिंह के शब्दों में :–

शहर के सिक्खों के पुजारी भाई प्रदुमन सिंह ज्ञानी थे जो दरबार साहिब में गुरु ग्रंथ साहिब की ताबिया में, शराब पीकर कथा करते थे। शेष सब पेट पालने वाले पुजारी प्रार्थना करने वाले सरकारी जागीरदार तथा वेतन–हिस्सा लेने वाले नौकर थे। शहर में सिक्खों की आबादी बड़ी कम थी। वह अरोड़ा लोग थे जो दुकानदारी करके अपनी जीविकोपार्जन करते थे। बाबा फूला सिंह के बुर्ज वाले पांच, सात निहंग भांग के नशे में मस्त, ऊँच–नीच से बेपरवाह थे। कभी–कभी कोई निहंग किसी एकाध मुसलमान को तुर्कड़े कहकर बोल बुलारा कर जाता था परंतु मुसलमान बूच्चड़ों की ज्यादतियों से छुटकारा पाने हेतु कोई कारा करने का साहस किसी को भी नहीं होता था।

**– नामधारी इतिहास**

एक थे भाई देवा सिंह जी, भाई वीर सिंह नौरंगाबाद वाले के सेवादार। एक दिन दरबार साहिब की परिक्रमा में एक हड्डी पर उनकी नज़र पड़ गई। उनका हृदय छलनी–छलनी हो गया। उन्होंने सिक्ख स्वाभिमान को ललकारने तथा जागृत करने के लिए वह हड्डी उठाकर गुरु ग्रंथ साहिब के सामने रख दी। इसकी चर्चा माथा टेकने आते लोगों में होने लगी। चाहिए तो यह था कि ज़िब्हाखानों के विरुद्ध आवाज़ बुलंद की जाती; सरकार पर उनको बंद करने के लिए दबाव डाला जाता। परंतु जो हुआ वह अनोखा ही हुआ। उल्टा उनको ही दोषी ठहराया गया। लोगों को उकसाने, दंगा फसाद

करवाने के दोष में उनको तीन वर्ष की सजा हुई। लोग सरकारी न्याय पर आश्चर्यचकित हो रहे थे।

लोगों की भावनाओं के भड़कने की स्थिति ८ मई १८७१ ई. को भी पैदा हो गई। अमन शांति भंग होने के हालात पैदा हो गये। सिक्खों के मन भाई देवा सिंह जी को कैद करने के कारण पहले ही क्रोधित थे। शहर में अब किसी बात पर कहासुनी हो गई। उनके हाथों से तीन कश्मीरी मुसलमानों की पिटाई हो गई; शोर मच गया। घटना को मज़हबी रंग दे दिया गया। भीड़ इकट्ठी हो गई। लोग एक दूसरे को ईट पत्थर मारने लगे। भीड़ को तितर–बितर करने के लिए एस.पी. टरटन स्मिथ स्वयं मौका–ए–वारदात पर हाज़िर हुआ। ईंट पत्थरों के रुकते थपेड़ों ने उसका भी लिहाज न किया।

डी. सी. ने इस घटना पर विचार करके ६ मई को पुनः शांति स़्थापित करने के लिए गणमान्य व्यक्तियों की एक सभा बुलाई। नाम के भाषण हुए; आपस में मिल–जुल कर रहने के वायदे किए गए और बस!

पर इसके विपरीत ६ मई को ही २२ हिंदुओं पर, मुसलमानों को डराने, धमकाने के दोष में मुकदमे चलाए गए। उन पर दंगे फसाद करने या अमन शांति भंग करने का दोष लगाया गया। लोग समझ गए कि डी. सी. की मीटिंग तो केवल आंसू पोंछने के लिए ही थी। उनको सरकार से किसी प्रकार के न्याय का विश्वास ही नहीं था। उन्होंने रोष के कारण मुसलमानों से बोलना–चालना, मिलना–जुलना, लेना–देना बंद करने के बारे में निर्णय ले लिया। इससे सामाजिक असहयोग जैसी उत्पन्न हुई स्थिति कारण मुसलमानों के हृदय भी दुखी हुए।

अमृतसर के हालात् बड़ी शीघ्रता से दुखदायी एवम् असहनीय होते जा रहे थे। इसके बारे में अमृतसर के कमिश्नर डब्ल्यू डी. डेविस ने २२ मई १८७१ ई. को पालिका के सदस्यों की तत्काली सभा का आयोजन किया। इस मीटिंग का मता बूच्चड़खानों के बारे में तथा बदलते हालात् के बारे में था। हिंदू–मुस्लिम सदस्य तनाव कम करना

चाहते थे। इसलिए उन्होंने एकमत होकर यह मशवरा दिया कि दूसरों की भावनाओं का आदर करते हुए एक वर्ष के लिए इन ज़िब्हाखानों को बंद कर दिया जाए।

डेविस की इच्छा उनकी राय मानने की तो थी ही नहीं। उसने लंबा–चौड़ा भाषण दिया जिसमें मुसलमानों की धार्मिक स्वतंत्रता का जिक्र किया। एक–दूसरे के धर्म में हस्तक्षेप न करने का सुझाव दिया। अंत में ज़िब्हाखाने कायम रखने का अपना मत पेश कर दिया। सभी आवाक् से एक–दूसरे के मुंह की ओर देखते रह गये। पर वह थे तो सरकार के ही पिट्ठू। इसलिए उन्होंने प्रस्ताव की हमायत कर दी। वह मत सर्व–सम्मति से पास तो होना ही था, सो हो गया।

यह प्रस्ताव लोगों के घर–घर पहुंच गया। गली बाज़ारों में जहां चार लोग इकट्ठे होते इसकी चर्चा होती। कुछ लोग तो यह कहकर बात समाप्त कर देते 'चलो सरकार की इच्छा'।

हिंदू–सिक्खों के उतरे चेहरे बाबा लहणा सिंह ने भी देखे। काम करते हुए उन्होंने लोगों को बाते करते हुए भी सुना। उनके ह्रदय में सरकार की दृढ़ता कारण रोष जाग उठा। वह सोचने लगे कि अब तो कुछ करना ही चाहिए परंतु फिर मन में आ गया कि वह अकेले कर भी क्या सकते हैं?

मिस्त्री लहणा सिंह को कुछ समय पहले की एक बात स्मरण हो आई जब वह सवेरे सरोवर में से स्नान करके आ रहे थे। उनके साथ हाकम सिंह पटवारी थे। उन्होंने कहा–

"देखा। बिल्ला क्या कार्य कर रहा है?"

"पता है, गऊ–गरीब के गले पर छुरी चला रहा है।"

"फिर कुछ करना चाहिए।"

"कोई कुछ नहीं कर सकता, हम सब घर–गृहस्थी वाले नून तेल के पचड़े में ही पड़े रहते हैं – नोन, तेल, लकड़ी के चक्कर में फंसे हुए है।" बाबा जी ने कहा।

"छोड़ो बाबा जी! सभी एक जैसे थोड़ी ही होते हैं। हाथ की पांचों उंगलियाँ बराबर नहीं होती, मुझे जब भी हुक्म करोगे मैं, नई नवेली दुल्हन को छोड़कर भी आ जाऊंगा।"

बाबा जी ने सोचा वह तो साथ देगा ही। वह पंथ की – डाक सेवा का एवम् संदेश वाहक का काम तो करते ही थे। साध–संगत में विचरने के कारण उनको उनके साथ सलाह–मशवरा मिलाने तथा उसको गुप्त रखने वाले साथियों के बारे में भी पता था। एक बार की बात है। उनकी पत्नी अपने मायके गई हुई थी। उनके घर संत बील्हा सिंह, हाकम सिंह पटवारी, मेहर सिंह, भगवान सिंह मराणा आदि बैठे थे। बातचीत चल रही थी। क़िसी ने जोश में आकर कहा।

"'इन तुर्कों को ठीक करना पड़ेगा। यह सरकारी शह पर गो–वध करते हैं, उन्होंने दरबार साहिब की पवित्रता का भी ध्यान नहीं किया।"

"भय्या ठीक तो कर दें, परंतु चीनीवाले पात्शाह से आज्ञा कैसे लेकर आएंगे।" तो बात वहीं दब गई।

तत्पश्चात्, जल्दी ही निमाणी एकादशी का मेला आ गया। हिंदू–सिक्ख एवम् मुसलमानों के आपसी संबंध तो अब मधुर नहीं रहे थे। इसलिए आपसी सहयोग वाली स्थिति कायम नहीं रही।

हर वर्ष निमाणी के मेले पर हिंदू कोरे, नये बर्तन खरीदते थे। वह खुले मुंह वाले छोटे घड़े, सुराहियाँ, मग्गे, कुल्हड़, कुज्जियाँ कुछ भी खरीदते। बर्तन अधिकतर मुसलमान कुम्हार ही बनाते थे। मेले में अधिक बिक्री करने के लिए वह अधिक से अधिक बर्तन बनाकर तैयार कर लेते थे। परंतु इस मेले में उनकी बिक्री नहीं हुई। लोगों ने पिछले वर्ष के घर पड़े बर्तनों से ही काम चला लिया। बाबा लहणा सिंह जी ने भी अपने घरवालों को कोई नया कोरा बर्तन नहीं खरीदने दिया। बेचारे कुम्हार निराश हो गये। वैसे उनको मालूम था कि उनके हम–मजहब कसाइयों के किए की सजा ही उन्हें मिली थी।

हिंदू ठठिआरों ने भी मुसलमानों के पीतल, तांबा, सिलवर के टूटे बर्तनों के बदले नए बर्तन देने से इंकार कर दिया। इसको मुसलमानों ने अपनी तौहीन समझा।

कमिश्नर डेविस के पास इससे संबंधित शिकायत भी पहुंच गई। ऐसा महसूस किया गया कि यह आपसी असहयोग केवल, बेचारे गरीबों की ही नहीं, बल्कि धनी दुकानदार एवम् अमीर व्यापारियों की कम्मर भी तोड़ देगा क्योंकि बिना पैसे कोई क्या खरीदेगा? कोई भी और सामान क्यों कर लाएगा? दुकानदार का क्या बिकेगा? इसका उपज तथा व्यापार पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशा से बचा नहीं जा सकता था। पहले ही सत्गुरु राम सिंह जी की स्वदेशी लहर एवम् असहयोग आंदोलन नें लिप्त उनके दस लाख अनुयायियों में विदेशी वस्तुएं बिकने नही दी थी। खैर! कमिश्नर ने हरचरन दास, ज्ञानी प्रदुमन सिंह, खां मुहम्मद शाह एवम् तीनों धर्मों के और गणमान्य व्यक्तियों को बुलवाया। उसने उनको व्यापारिक मेल–जोल रखने के लिए निर्देश दिया।

३ जून १८७१ ई. में उसने शहर के टाउन हॉल में एक मींटिंग बुलाई। इस मींटिंग में नगरपालिका के समस्त सदस्यों, गली मुहल्ले के मुख्य लोगों, ज़मीदारों, साहूकारों एवम् यूरोपीय अफसरों को शामिल किया गया। डेविस ने अपना पहले से तैयार किया भाषण पढ़ा। उसके भाषण का मूल मुद्दा गो–वध कायम रखना था।

डेविस ने अपने भाषण में दिलों में पैदा हो रही कड़वाहट एवम् हो रहे फसादों पर रोष प्रकट किया। गो–वध के संबंध में पुरानी दलीलों, तर्कों का ही सहारा लिया गया, सबको सद्‌भावना से रहने के लिए अपना रसूख प्रयोग करने के निर्देश दिए गए।

इसकी प्रतिक्रिया की तो आशा ही नहीं की जा सकती थी इसलिए सभी ने हां में हां मिलाई, गले मिले ऐसा लगता था कि कड़वाहट का गर्म माहौल कुछ ठंडा पड़ेगा।

परंतु हालात् इसके भी विपरीत ही थे। मुसलमान गलियों में आवाज़ें लगा–लगाकर मांस बेचने से हटते नहीं थे। यदि किसी को कानून तोड़ने के लिए निचली अदालत सज़ा देती तो ऊपर वाली अदालत उसको बरी कर देती। सभी कुछ योजनावद्ध तरीके से सोची समझी चाल के अंतर्गत ही तो हो रहा था।

सरकार की इस चाल को रोकने के लिए अब केवल एक ही हथियार शेष था कि–

इत मार्ग पैर धरीजै।
सिर कीजै काणि न कीजै।

यह मार्ग तो सिर कुर्बान करने वाले वीरों का ही हो सकता था। सिर धड़ की बाज़ी लगाने वालों का। बाबा लहणा सिंह जी के हृदय में कुर्बानी का जज़बा ठांठे मार रहा था। वह समझते थे कि पानी सिर के ऊपर से गुज़र रहा है। अंग्रेज़ों के साथ तो उनका दूर का भी वास्ता नही था क्योंकि उनको यहां के समाज, धर्म, भाईचारे, संस्कृति का कोई दर्द नहीं था। वह अपने स्वार्थवश, भारत, यहां के निवासियों का किसी भी सीमा तक नुकसान कर सकते थे। बाबा लहणा सिंह तो कई बार पवित्र अमृतसर सरोवर में स्नान करके भी अपने आपको पवित्र होने के स्थान पर पतित हुआ समझते थे। पता नहीं कौए, चीलों ने साथ वाले बूच्चड़खाने में से क्या उठाया हो जो उसमें गिर गया हो।

एक बार वह घर में अकेले ही थे। उनकी पत्नी एवम् बच्ची गाँव गई हुई थी। वह रात तारों की छाया में सोचने लगे कि हरिमंदिर साहिब की पवित्रता कैसे बचे? यही सोचते–सोचते पता नही कब उनकी आँख लग गई।

वह भोर भए उठे, स्नान आदि करके नितनेम किया, भगवान का भजन किया, गुरु–वाणी पढ़ी। उग्रदंती का पाठ करते यह पक्तियां भी आ गई।

यही आस पूरन करहु तुम हमारी।
मिटै कष्ट गऊअन, छुटै खेद भारी।

पाठ तो वह प्रतिदिन ही करते थे परंतु आज उनका मन दृढ़ हो गया कि अमृतसर का सुख–चैन तो गो–हत्या कारण लुप्त होता जा रहा है। इसी दुख के बारे गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपनी बाणी में लिखा था।

यही दे आज्ञा तुर्कन गति खपाऊं।
गऊ घात का दोख जग सिउं मिटाऊं।

उनके घर, नामधारी धर्मशाला या किसी और घर जब भी जहाँ चार नामधारी सिक्ख इकट्ठे होते तो सहज भाव से ही अमृतसर की बदलती फिज़ा के बारे में जिक्र शुरू हो जाता। धीरे–धीरे यह संख्या दस तक हो गई तथा वह करो या मरो के भाव से सोचने लगे। इन दस व्यक्तियों में बाबा लहणा सिंह के बिना सर्वश्री संत बील्हा सिंह संधु नारली, फतेह सिंह भाटड़ा अमृतसर, हाकम सिंह पटवारी मौड, लहणा सिंह लोपोकी, लहणा सिंह सुपुत्र बलाका सिंह, लाल सिंह सिपाही, मेहर सिंह, भगवान सिंह मराणा एवं झंडा सिंह ठट्टा भी सम्मिलित थे। इस समय सबसे महत्वपूर्ण कार्य अमृतसर का हो रहा अपमान, रोकना था।

इन सिक्खों में हाकम सिंह पटवारी, विधवा माता का इकलौता सपूत था। वह मौड़ गाँव का ब्राह्मण था, जिसने किसी समय बातचीत के दौरान बाबा लहणा सिंह जी को यह कहा था कि वह नई नवेली दुल्लन छोड़कर भी आ जाएगा। उसका अभी–अभी गौना हुआ था परन्तु जब उनके गाँव जाकर बाबा लहणा सिंह ने उसको घर से बाहर बुलाकर कहा "सिंह साहिब अब समय आ गया है, अपनी पद्मिनी जैसी सुंदर पत्नी तथा मृत्यु रानी में से किसी एक को चुनने का, चुन लो।" वह अपनी माता एवम् गौने आई पत्नी के यह कहकर कि अनिवार्य कार्य है, जा रहा हूँ। बाबा जी के संग हो लिया।

१० जून, १८७१ ई. को शूरवीर बाबा लहणा सिंह जी के घर इकट्ठे हो गये। उनको कोई राह दिखाई नहीं दे रहा था, कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। बातचीत करके सब चले गये। बाबा जी तारों से भरा थाल देखते–देखते सो गए। स्वप्न में पहले उनको सत्गुरु अर्जन देव जी के, फिर सत्गुरु तेग बहादुर जी के दर्शन हुए। आपने दोनों को नमस्कार कर धर्म स्थानों के अपवित्र होने की दुखभरी दास्तान सुनाई। उन्होंने वचन किया :

"सिंहो ! शहादत का जाम पीने के लिए तैयार हो जाओ, साहस करो, गुरु कृपा करेंगे। शहीदी पहरा तुम्हारे साथ रहेगा, तुम सब प्रकट नहीं होगे।"

वह अकस्मात् उठ बैठे, वहाँ कोई नहीं था पर उनको ज्ञान रूपी प्रकाश मिल गया। वह सुबह अपने काम पर भी नहीं गए। उन्होंने अपने सभी साथियों को सत्गुरु जी का अर्शीदवाद उनके साथ होने के बारे में बताया। सब खुशी में झूमने लगे। उन्होंने सर्वप्रथम हमले का निशाना, घंटाघर वाली जगह का बूच्चड़खाना निश्चित किया। उनमें से कुछ को अच्छी गत्तका बाज़ी भी आती थी। इसलिए उन्होंने सोचा कि यदि कसाइयों का मुकाबला किया तो वह पैंतड़ा बांधकर उनको करारे हाथ दिखाएंगे।

उसी दिन, ११ जून, १८७१ को सिक्ख लहणा सिंह लोपोकी, घर एकत्रित हुए। वहाँ हथियारों की कमी महसूस की गई।

हथियारों की कमी को पूरा करने के लिए सरदार लाल सिंह सिपाही पुलिस लाईन गया। वैसे तलवार रखने के लिए सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती थी, परन्तु वहाँ से वह कुछ तलवारें ले आया। कुछ सिक्खों ने सफाजंग ले लिए। वह १२ जून १८७१ ई. सोमवार को आधी रात के समय दबे पाँव घंटाघर वाले बूच्चड़खाने की ओर बढ़े। वहाँ पहुँचे, तो उन्हें देखकर कुत्ते भौंकने लगे। कसाइयों के जाग जाने के भय से सारे सिक्ख इधर–उधर हो गए।

१३ जून को भी हमला करने की उनकी योजना विफल ही रही। वापिस आकर संत मेहर सिंह एवम् झंडा सिंह ने यह सुझाव दिया कि और आदमी तथा हथियारों का प्रबन्ध करना चाहिए जिसको अस्वीकृत कर दिया गया। बाबा जी के पड़पोते संत दलीप सिंह जी बताते हैं कि १४ जून, ज्येष्ठ सुधी पूर्णिमा को सुबह बाबाजी के गृह हवन किया गया। सत्गुरू जी को नम्र निवेदन किया गया कि –

"गो–गरीब का कष्ठ दूर करो। बंदीखाने की बंद खलास करो। महामलेच्छ का नास करो। अपने संत खालसे का प्रकाश करो। अंग–संग सहायक हो, शहीदी पहरा बख्शो, हर मैदान खालसे की फतेह की कृपा करो।"

प्रार्थना करके सबके चेहरों पर नूर था। उनको अटूट विश्वास था कि आज अवश्य ही उन्हें सफलता भी प्राप्त होगी। यह निर्णय करके कि रात के पाँचवे पहर सरोवर में से स्नान करके कार्य करने के लिए चलेंगे, वह अपने–अपने ठिकाने चले गये। किसी अड़ोसी–पड़ोसी को भी इस बात का शक नहीं हुआ कि उनकी योजना कोई कारा करने की है क्योंकि वह समझते थे कि बाबा जी के घर पर तो सिक्ख–साधु आते ही रहते हैं।

निश्चित कार्यक्रमानुसार, सिक्ख दरबार साहिब पहुँचे। संत हरनाम सिंह जी के शब्दों में,

समें रात दे सिंह इह बीर बांके,
हर की पौड़ियाँ दे बिच्च नाए करके।
पल्ले गलां बिच्च पाए अरदास सोधी,
चरनां सत्गुरूं दा ध्यान लाए करके।
अंग–संग हो के रच्छिया करो साडी,
औगुण असां दे कुल भुलाए करके।
सच्चे पात्शाह जी सानू फतेह बख्शी,
आपणे नाम दी लाज रखाए करके।

सौंहे मत्थे मरीए जे कर मौत आवै,
ज़ालम पापीयाँ मार मुकाए करके।
बूच्चड़खाने विच वड़े हरनाम सिंघा,
सति सिरी अकाल बुलाए करके।

**– संत खालसा**

ज़िब्हाखाने के बन्द दरवाजे के पास एक–एक करके सिक्ख पहुँचे। उनके पास रोटियाँ थी। सबसे पहले पहुँचने वाले ने कुत्तों को रोटियाँ डाल दी। कुत्ते रोटियाँ खाने लगे। एक सिक्ख कत्लगाह के पीछे की ओर गया। वह उस गंदी नाली में से अंदर गया जिसमें से कत्ल की गई गायों का रक्त बाहर बहता था। कसाई घोड़े बेचकर चैन की नींद सोए हुए थे। उसने जब आगे की ओर आकर ताला खोला तो ताला उछल कर नीचे गिर पड़ा। ऐसा महसूस होता था कि वह पहले से ही खुला पड़ा था। सारे सिक्ख अंदर आ गए। लगभग सौ के करीब श्यामा, चितकबरी, भूरी, सफेद और पाटल गायें खड़ी थीं या बछड़े। सिक्खों ने उनके रस्से काटने आरंभ करके, उनको साथ के साथ बाहर हाँकना आरंभ कर दिया। गाएं रंभाई, बछड़े कुलाचे भरने लगे। कसाई शोर सुनकर उठ खड़े हुए। उन्होंने शोर मचा दिया, सिक्ख आ गए, सिक्ख आ गए तथा जो कुछ भी हाथ लगा हाथ में उठाकर चाँदनी रात में सिक्खों की ओर बढ़े। सिक्ख तो इस परिस्थिति के लिए पहले से ही तैयार थे। उन्होंने जैकारे गजाए तथा कमर कस ली। हथियारबंद वे थे ही। उन्होंने अपने आपको भी बचाया तथा तलवारों, सफाजंगो से वापसी जवाब भी दिया। कम शक्ति से वह अधिक लोगों को जख्मी कर रहे थे। ऐसा लगता था कि उनके हाथ में ही हथियार थे। उनका धावा किसी दैवी के शक्ति कारण या शहीदी पहरे के कारण कसाइयों का जानी नुकसान कर रहे थे।

जोशीले, हथियारों की खनक एवं अचानक हुए हमले में मारे गए, जख्मी हुए कसाइयों ने दूसरे कसाइयों के हौंसले ही पस्त कर दिए।

सिक्ख हथियार चलाते, गायों के रस्से काटते, गायों को हाँकते दरवाजे से बाहर आ गए। किसी ने भी उनका पीछा नहीं किया। उन्होंने गायों को हाँककर, भक्तों वाले दरवाजे के बाहर की ओर जंगल में छोड़ दिया। स्वंय वह अपने रक्तरंजित वस्त्र बदलने के लिए लगभग एक मील की दूरी पर एक भट्ठे के पास, जिसके पास एक कुआँ तथा एक कुप्प था, की और हो लिए। वहाँ पहुंच कर उन्होंने अपने वस्त्र बदले, हथियार छुपाए। बाबा लहणा सिंह ने तो सफाजंग कुएँ में ही फैंक दिया। फिर वह अपनी सफलता एवं सही सलामत वापसी पर; अकाल पुरुख प्रभु द्वारा सफलता प्रदान करने पर, उसका शुकराना करते हुए वापस अपने मार्ग पर चल पड़े।

ज़िब्हाखाने के अहाते में जब कसाइयों ने अपने आदमियों को संभाला तो उनमें से चार तो अल्लाह को प्यारे हो चुके थे। उनके नाम पीरा, जिऊंणा, शादी तथा अमामी थे। तीन कसाई कर्मदीन, ईलाही बख्श, खीवा बहुत अधिक जख्मों के कारणा हाय–हाय कर रहे थे।

१५ जून १८७१ ई. को, वृहस्पति के दिन प्रातःकाल होने तक ज़िब्हाखाने पर हुए हमले का समाचार शहर में जंगल की आग की भांति फैल गया। हिंदुओं के दिल में अति प्रसन्नता हुई कि कोई तो वीर बहादुर प्रकट हुआ। मुसलमान भय से आतंकित थे परन्तु अंदर ही अंदर वह भी हम–मज़हबी, मुसलमानों को कोस रहे थे जिन्होंने बेगानी शह पर बात को बढ़ाया था। सारे शहर के कसाइयों का भय के मारे बुरा हाल था। उनको अब डर लग रहा था कि पता नहीं कब उनको भी कत्ल कर दिया जाए। अतः उन्होंने अपनी रक्षा कसाई के काम को त्यागकर तौबा करने में ही बेहतर समझी।

बाबा लहणा सिंह और उनके साथी पहले की ही भांति निडर विचर रहे थे। कभी वह शहर में रहते कभी बाहर चले जाते परन्तु उनको आत्म संतुष्टि थी कि उन्होंने बहादुरों, शूरवीरों वाला कार्य किया था।

# शीश अर्पण

बाबा लहणा सिंह एवम् उनके साथी अपने आपको सुरक्षित समझ, बुलंद हौंसले से अपना नित्यकर्म करते थे वह सुमिरन एवम् भक्ति करते, सैर–सपाटा करते विचर रहे थे। सरकार कसाईबाड़े पर हुए आक्रमण से परेशान थे। डिप्टी कमिश्नर का उच्चाधिकारियों को उत्तर देना कठिन हो गया था कि ऐसा था उसका प्रशासन! ३ जून १८७१ को कमिश्नर द्वारा किए गए दरबार की कोई अहमीयत ही नहीं थी। जो होना था वह तो हो गया परंतु कातिलों का न पकड़े जाना तो सरकार की असफलता का ही ज्वलंत उदाहरण था। डी. सी. ने प्रशासन का रौब–दाब रखने के लिए कातिलों को तुरंत पकड़कर सजाएँ दिलवाने का विश्वास दिलाया, पुलिस की खिंचाई की, दोषियों को पकड़ने के लिए प्रत्येक नागरिक से सहायता की गुहार लगाई। पुलिस के लिए सर्वप्रथम एवं आसान काम शक के कारण संदिग्ध, भोले–भाले निर्दोष लोगों को पकड़ना था, उसने वह किया। परंतु कोई संतोषजनक परिणाम न निकला। मुसलमानों के हृदयों में से नाम मात्र भी दहशत कम नहीं हुई।

पंजाब सरकार ने अमृतसर की पुलिस को असफल मानकर यह कत्ल केस २४ जून १८७१ ई. को मिस्टर क्रिस्टी को सौंप दिया। वह सबसे अधिक चतुर एवम् जासूसी में निपुण पुलिस अधिकारी समझा जाता था। वह जालंधर शहर का एस.पी. था। उसने अमृतसर आकर उत्तरदायित्व सँभालते ही संदिग्ध पकड़े गए लोगों को रिहा कर दिया ताकि बाकी लोगों की राय अपने हक में क़र सके। उसका कार्य क्षेत्र कातिलों को सज़ा दिलवाना तथा मुसलमानों के हृदयों में से डर तथा भय समाप्त करना था।

मिस्टर क्रिस्टी की सहायता के लिए काफी मात्रा में पुलिस थी। उसके स्टाफ में होशियारपुर ज़िले का पुलिस इंस्पैक्टर फज़ल हुसैन, डिप्टी इंस्पैक्टर डोगरमल, अत्तर सिंह, सुर्जन तथा मईया सिंह, तीन सारजैंट और आठ सिपाही नियुक्त किए गए थे। इन्होंने नगर में कोतवाली से अलग, एक मकान लेकर वहां छानबीन का कार्य आरंभ किया।

सर्वप्रथम उसने कातिलों का पता देने वाले व्यक्ति को एक हज़ार रुपए ईनाम देने की घोषणा करवाई। उसने नगर में मंगल सिंह रामगढ़िया, भगवान सिंह, राय मूल सिंह, खान मुहम्मद शाह आदि के साथ संपर्क स्थापित किया। इस कत्ल केस में उनकी ओर से विशेष तौर पर सहायता मिलने की इच्छा व्यक्त की।

खान मुहम्मद शाह तो अंदर ही अंदर ज़हर घोल रहा था। वह सोचता था कि कब समय आए कि वह कसाइयों के कातिलों को पकड़वा कर सज़ा दिलाए। हम–मज़हबों के कातिलों का बदला लेकर, इसके लिए पारितोषिक ग्रहण करे, सब तरफ से शाबाशी ले। अपनी ओर से उसने चालाकी से काम लिया। अपने जैसे चरित्रहीन शराबी–कबाबी निहाल सिंह, गुरमुख सिंह तथा कान्ह सिंह जैसों से साँठ–गाँठ कर ली। मिस्टर क्रिस्टी को विश्वास में ले लिया तथा उपरिलिखित लोगों को पट्टी पढ़ा दी कि वह गली, बाज़ारों, कूचों में कहते फिरें कि कातिल वही हैं। खान समझता था कि इससे वास्तविक कातिल चिढ़ जाएंगे और वह अवश्य ही शेखी बघारेंगे कि कातिल तो वह हैं। बक पड़ेंगे। इस प्रकार असली कातिलों को पकड़ने की योजना बनाई गई परन्तु इस शोशेबाज़ी का तो कुछ भी परिणाम न निकला। बस ठन–ठन गोपाल!

मिस्टर क्रिस्टी को भी कुछ समझ नहीं आ रहा था। उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ रहा था। वह सोच में पड़ गया। उसने शहर के कुछ और हिंदू गुंडे बुलाए। उनको डराया–धमकाया, लोभ–लालच का

चोगा भी डाला, पर सफलता नहीं मिली, हुआ कुछ भी नहीं। तत्पश्चात् उसने पुलिस के बीते दिनों का रोजनामचा मंगवाया, उसमें दर्ज रिर्पोटों को बड़े ध्यान से पढ़ा। गंभीरतापूर्वक सोचा। उसे १० जून १८७१ ई. शनिवार को करीब बख्श तथा पीर बख्श द्वारा लिखवाई रिपोर्ट से हीरा सिंह भाटड़े का नाम मिला। वह उस दिन ज़िब्हाखाने के बाहर चक्कर लगा रहा था। क्रिस्टी की सोच की सुई वहीं अटक गई। उसको लाया गया और उस पर बहुत ही कहर ढाए गए। उस पर बहुत तश्दद ढाहे गये। उसे बहुत पीटा गया। उसको सोने नहीं दिया गया, और भी कई प्रकार के कष्ट दिए गए। उस पर तो मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा जब भगवान सिंह ने उसके गुंडे होने की गवाही दे दी। उसका रोना, चीखना-चिल्लाना तथा सच्चाई, सभी अर्थहीन हो गए। हां, जब ३ जुलाई १८७१ ई. को पुलिस का तश्दद न सह सकने के कारण उसने कबूल कर लिया कि कत्ल उसी ने ही किए हैं तो पुलिस को विश्वास हो गया कि उसने सच्चाई से पर्दाफाश कर दिया है। हीरा सिंह ने सच बोला है।

जब उसको और साथियों के नाम बताने के लिए धमकाया गया तो उसने हीरा सिंह बदमाश का नाम बता दिया। जब बदमाश को पीटा गया तो उसने अपने को कातिल कहना ही था। ७ जुलाई को उन दोनों को वायदा मुआफ गवाह बनाने का लारा लगाकर और कातिलों के नाम पूछे गए। उन्होंने सेठ जयराम का नाम ले दिया। जब सेठ जयराम की मार खाने की बारी आई तो उसने समझदारी से काम लिया। मार खाने के स्थान पर कातिल होने की हामी भरने में ही भलाई समझी। पुलिस ने उसके साथ भी वायदा मुआफ गवाह बनाने का इकरार किया।

इस प्रकार से मिस्टर क्रिस्टी जांच-पड़ताल कर रहे थे। जबकि डी.सी. अमृतसर को तहकीकात का यह ढंग ज़रा भी पसंद नहीं था परंतु कार्यवाही डालने के लिए तथा अपने उच्चाधिकारियों को रिपोर्ट

भेजने के लिए उसे अनुकूल एवं पर्याप्त लगा। जनसाधारण नागरिक की राय में इस प्रकार की कार्यवाही का परिणाम कितना न्याय–संगत होगा?

यह कार्यक्रम चलता रहा। तीन वायदामाफ गवाहों की सहायता से कुछ और निर्दोष नागरिक जिनमें अकाल बूंगे के निहंग भी थे पकड़कर लाए गए। सबके साथ अत्याचार का व्यवहार किया गया। असीमित, असहनीय कष्ट इन लोगों को दिए गए। अपनी इच्छानुसार परिणाम निकालकर, २० जुलाई को मिस्ल तैयार की गई।

मिस्टर क्रिस्टी ने १२ लोगों को कसाइयों का कातिल ठहराया। वह व्यक्ति थे– संत राम, राम किशन, मन्ना सिंह निहंग, ज्वाला सिंह, पन्ना जी, मूला, निहाल सिंह, मईया, सुंदर सिंह, रूप सिंह, टेका तथा शोभा। इन बारह नागरिकों पर २१ जुलाई से मजिस्ट्रेट की कचहरी में मुकदमा चलना आरंभ हुआ। बकायदा चश्मदीद गवाह पेश हुए। उन्होंने कसमें खाकर, कसाइयों के कत्ल होने के बारे मे आँखों देखी तथा कानो सुनी वारदात का बयान दिया। उनकी गवाही के आधार पर संत राम आदि को कातिल करार देकर २५ जुलाई को मिसल पूर्ण कर, फाइल डी.सी. को भेजी गई। डी.सी. ने भी इस फाइल पर तस्दीक के हस्ताक्षर करके इसको सैशन जज के पास भेज दिया ताकि उसके कार्यवाही करने के पश्चात् दोषियों को सज़ा दी जा सके।

डी. सी., एस. पी. तथा अन्य अफसर प्रसन्न थे कि उन्होंने न्याय किया है। निर्दोष कसाइयों के कातिलों को बंद कराकर पूर्णतया कानूनी कार्यवाही करके सजाएँ सुनाई हैं। दूध का दूध पानी का पानी कर दिया है।

मुसलमान अति प्रसन्न मुद्रा में थे, वह ब्रिटिश सरकार के गीत गा रहे थे जिसने उनको न्याय दिया था।

मिस्टर क्रिस्टी का तो ज़मीन पर पाँव ही नहीं टिकता था। उसका तो कहना ही क्या! वह धरती से एक बलात् ऊपर उठकर चलता था। उसको शाबाशी, ईनाम, पदोन्नति मिलने में तो कोई शक था ही नहीं। दूसरे अधिकारी भी उसकी सूझ–बूझ का लोहा मानने लगे।

दूसरी ओर झूठी गवाहियों के आधार के कारण हुए अन्यायपूर्ण निर्णय से दोषी करार दिए गये लोगों के घर मौत का साया एवम् सन्नाटा छा गया।

धार्मिक प्रवृत्ति वाले शूरवीरों पर किसी को शक नहीं था। उनमें से बाबा लहणा सिंह, बील्हा सिंह आदि तो सत्गुरु जी के दर्शनार्थ उनके चरणों में श्री भैणी साहिब बैठे हुए थे।

इन दिनों सत्गुरु जी भी अप्रसन्न रहते थे। कारण था १५ जुलाई की पिछली रात राय कोट ज़िब्हाखाने में कत्ल केस की दुर्घटना हो चुकी थी। कुछ नामधारी सिक्ख पकड़े भी जा चुके थे। सच्चे पात्शाह जी को गवाही देने के लिए बस्सी जाना पड़ता था।

श्री भैणी सांहिब में अमृतसर एवम् रायकोट की घटनाओं की चर्चा थी। संगत यह समझती थी कि कत्ल केस में पकड़े गए व्यक्ति निर्दोष हैं।

सच्चे पात्शाह जी ने एक दिन संगत में बैठे हुए, निर्दोष व्यक्तियों के पकड़े जाने पर दुःख प्रकट किया। आपने वास्तविक दोषियों को अपने जुर्म का इकबाल करने की हिम्मत दिखाने की इच्छा व्यक्त की। संतो की संगत में बैठे लहणा सिह तथा बील्हा सिंह ने समझ लिया कि सत्गुरु जी का यह प्रवचन तो उन्हीं के लिए ही है। वह सत्गुरु जी के समक्ष करबद्ध खड़े हो गए। उन्होंने अमृतसर हुई दुर्घटना की गाथा ज्यों की त्यों कह सुनाई तथा विनती की–

"दीनबंधु! हमें हरिमंदिर साहिब की पवित्रता तथा गो रक्षा के लिए मजबूरी में यह सब कुछ करना पड़ा। हमें बख्श दीजिए।"

"भाई गायों के रस्से काटकर, गरीबों, असहायों को दुःखी होता देखना भी तो अच्छी बात नहीं।"

"दीनबंधु! हमारे लिए क्या आज्ञा है।"

"जाओ! जो फसल आपने बोई थी, उसे स्वयं ही काटो, अनाज का ढेर भी स्वयं ही संभालो।"

उन्होंने नतमस्तक होकर सत्गुरु जी की आज्ञा का पालन किया। चरण वंदना कर श्री भैणी साहिब से चल पड़े।

अमृतसर आकर इन्होंने अपने साथियों को ढूंढा। उन्हें ज्ञात हुआ कि मेहर सिंह तो काबुल चला गया था। झंडा सिंह तथा भगवान सिंह का भी पता नहीं कहाँ विचर रहे थे। बाबा लहणा सिंह जी तथा बील्हा सिंह अपने शेष साथियों को मिले। उन सबको सत्गुरु जी की आज्ञा सुनाई। सबने आज्ञा के आगे शीष झुका दिए।

एक दिन सैशन जज कचहरी में बैठा मुकदमों की सुनवाई कर रहा था। यह सातों ही वहां जा पहुंचे और सत् श्री अकाल का नारा लगाया। वहां उपस्थित सभी लोग हतप्रद रह गए कि गले में ऊनी–सफेद मालाएं डाले, साधू–जन वहां क्या लेने आए हैं। जज ने शीघ्र ही कलम रोककर प्रश्न भरी निगाहों से उनकी ओर देखा। उन्होंने बताया कि वे यह  बताने आए हैं कि–

१. कूका कभी झूठ नहीं बोलता।

२. वह ब्रिटिश सरकार का वफादार नहीं।

३. वह गो–गरीब का रक्षक है।

४. वह अपने सत्गुरु जी की आज्ञा का पालन करता है।

५. अंग्रेज़ का कानून, न्यायालय, न्याय सभी झूठे हैं।

संत संतोख सिंह के शब्दों में – सिंघां नू लालीयां दगण। पहली पेशी फरंगी ने पूच्छियां तुमने बूच्चड़ बड्डे हैं। सिंह ने किहा बड्डे

है। सिंहा ने किहा कि इह नगरी साडे गुरु की है तो हिंदू धर्म की वस्सों है। तुर्का ने अर्जी दित्ती सी कि शहर में बूच्चड़खाना लगे सो तुसी बूच्चड़खाना शहर में लगा दित्ता है। नंदनों आयकै तुसी बूच्चड़खाने लाये हैं। इस पंजाब में कोई न सी करदा गउबध। चोरी जाके किधरे लुक के कोई करदा सी। तुसी परगट लाये है बूच्चड़खाने। तुहाडी शह नाल शहर विचे ही बेचणा शुरू कीता है मास। हिंदू का धर्म दूर हुंदा है। जे शहर में बूच्चड़खाना रिहा तां एतना खालसा तां हुण फांसी चड़ियां हैं फेर खालसा झल्लिया नहीं जाएगा। धर्म पर सब सीस देने वाले है। बूच्चड़खाना शहर में न रहे। हिंदू के साहमणे गउ–बध होवे तां हिंदू को परशाद छकणा, पाणी पीणा हराम है। साहमणे गउयां का बुरा हुंदा है तां ते हिंदू छतरी कोई नहीं रिहा। असां बूच्चड़खाने हटाउण दे वास्ता एक कारा कीता है। सातों देख के गउ का त्रास झल्लियां नहीं जांदा है। जो गउ का बुरा करे सो सानू बुरा लगदा है। एस गउ–बध हटावणे नू ते धर्म वरतावण नू गुरु नानक जी हुण बारहवां जामा पहिरिआ है। गउ दी छुरी उतारन वासते बूच्चड़ बड्डे हैन जे शहर में बूच्चड़खाना रिहा ता सरब खालसा बिगड़ जावेगा। कोई बंदोबस्त नहीं हो सकेगा। बूच्चड़खाने बंद करो, किसे जीव पर छुरी ना फिरे। –**सत्‌गुरु बिलास**

जब उन्होंने कत्लगाह पर हमला करने के उत्तरदायित्व वाले उन लोगों के सजा देने तथा निर्दोष १२ लोगों को छोड़ने के लिए कहा तो जज आश्चर्यचकित हो गया। वहां उपस्थित और लोग भी बिना पलक झपके एक–टक उनकी ओर देखने लगे। उनके बताने पर भी उन पर कातिल होने का शक किसी ने भी नहीं किया। जब उन्होंने रक्तरंजित वस्त्र, हथियार एवम् हुई दुर्धटना के कारणों का ब्यौरा दिया तो जज को मजबूर होकर विश्वास करना पड़ा।

बेचारा क्रिस्टी! उसकी सारी चतुराई धरी की धरी रह गई। वह खीझ गया।

बाबा लहणा सिंह एवम् साथियों के इकबालिया बयानों ने सरकार के किए कराए पर पानी फेर दिया। उन्होंने तो अपनी कारवाई डालनी ही थी। इसलिए डिप्टी जनरल इंस्पैक्टर पुलिस, कर्नल बेली ने मार्ग निकाल ही लिया। उसने लुधियाना के गुलाब सिंह से सम्पर्क स्थापित किया। गुलाब सिंह वह मनुष्य था जिसको रायकोट की घटना का मुज़रिम सिद्ध होने पर १ अगस्त को मृत्युदंड की सजा सुनाई जा चुकी थी।

२ अगस्त को ही गुलाब सिंह केवल चश्मदीद गवाह ही नहीं बना बल्कि उसने झूठा बयान भी दिया कि वह कसाईयों के वध के समय बाबा लहणा सिंह आदि के साथ ही था। आगामी कार्यवाही आरंभ हो गई। ७ अगस्त तक पूरा केस तैयार किया गया। मजिस्ट्रेट के निर्णय के अनुसार फतेह सिंह, बील्हा सिंह, हाकम सिंह, बाबा लहणा सिंह का चलान दफा ३०२ के अधीन करके मृत्युदंड की सजा सुनाई गई। लहणा सिंह सुपुत्र बलाका सिंह, लहणा सिंह लोपोकी एवम् लाल सिंह सिपाही का चालान १०६ एवं ३०२ दफा के अंतर्गत किया गया। इनको काले पानी की सजा दी गई। मेहर सिंह, लक्ष्मण सिंह एवं झंडा सिंह को भगौड़ा करार दिया गया। लहणा सिंह को छोड़ दिया गया।

सिक्खों द्वारा अपराध स्वीकार किए जाने के पश्चात् सरकार को अब उन १२ बेकसूर लोगों का ध्यान आया। जज ने ६ अगस्त को उन सबको निर्दोष होने के कारण बरी कर दिया। हीरा सिंह जैराम आदि भी उनके विरुद्ध दी गई गवाहियों से मुकर गए। सरकार ने उन पर फिर पहले दिए बयानों से मुकरने का दोष लगाया। बरी हुए निर्दोष लोगों में से मन्ना सिंह, राम किशन तथा मईये ने हीरा सिंह एवम् अहीये पर मानहानि का मुकदमा दायर कर दिया। हीरा सिंह तो रफू–चक्कर हो गया परंतु अहीए को १७ अक्तूबर १८७२ को दो वर्ष की कैद की सजा हुई। बहाली के लिए मुकदमा कमिश्नर तथा सुपरिंटेंडेंट अमृतसर विभाग, सैशन जज डब्ल्यु. जी. डेविस को भेजा गया।

उस समय के डेविस के न्यायालय के मिले दस्तावेजों के अनुसार इस केस का सारा ब्यौरा गुलाब सिंह की गवाही, हमला करने वाले सिक्खों के बयानों के आधार पर ही तैयार किया गया था। गुलाब सिंह ने बताया कि चौथी बारी किया गया आक्रमण सफल हुआ। पहला हमला अंतिम हमले से लगभग २० दिन पहले किया गया। दूसरा हमला ११ जून को किया गया। यह हमला करने के लिए सभी सिक्ख संत लहणा सिंह लोपोकी के घर से बाबा लहणा सिंह द्वारा तैयार किया कड़ाह–प्रसाद छक कर चले थे। संत फतेह सिंह जी उनके साथ थे परन्तु मार्ग में सभी स्थानों पर संतरी द्वारा रोके जाने पर वापस चले गए। तीसरा असफल हमला १३ जून को होना था परंतु इन सबको हथियारों की कमी का आभास हुआ क्योंकि लड़ाई भी तो हो सकती थी।

१४ जून को चौथा हमला करने की तैयारी के लिए सुबह सवेरे पहले कुछ सिक्ख एक–एक करके अलग–अलग ज़िब्हाखाने के पास से गुज़रे। वह तपोबन गए। वहाँ बाबा लहणा सिंह तथा लक्ष्मण सिंह आदि उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अंधेरा होता गया वह कभी चलते कभी रुकते, धीरे–धीरे आगे बढ़ते गए। सबसे पहले उन्होंने छिपाए हुए हथियार खोद कर निकाले फिर पास के ईटों के भट्ठे में कपड़े छिपाए। वह दस लोग ज़िब्हाखाने के पास जाकर एक चबूतरे पर से छलांगें मार कर अंदर गए और अपना कारनामा करके नौ–दो ग्यारह हो गए।

गुलाब सिंह के अनुसार भागते समय बाबा लहणा सिंह एवम् भगवान सिंह उसके साथ ही थे। बाबा जी ने एक सानी के कुप्प के पास, कुएँ में अपना सफाजंग फेंका और नौ दो ग्यारह हो गये।

गुलाब सिंह जिसको सरकारी गवाह बनाया गया था वह सरकारी बंदा था। मुखबर होने के कारण जिसे गुलाबू कहकर पुकारा जाता था का बयान तो सिक्खों द्वारा न्यायालय में निडर होकर दी गई

गवाहियों का ही बदला एवम् बिगड़ा विस्तृत रूप था। गुलाब के बयानों ने ही उसकी सार्थकता सिद्ध करनी थी।

इन बयानों में दो नाम अलग से थे। एक उसका अपना, दूसरा लक्ष्मण सिंह का। दो नाम नहीं थे एक सिपाही लाल सिंह का, दूसरा लहणा सिंह सुपुत्र बलाका सिंह का। यद्यपि भाई नाहर सिंह एवं भाई कृपाल सिंह द्वारा संपादित पुस्तक रिबैल्स अगेंस्ट दी ब्रिटिश रूल में पंजाब सरकार के सैक्रेटरी की ओर से भारत सरकार के सैक्रेटरी को लिखे गुप्त पत्र में २० जुलाई १८७१ के जुडीशियल डिस्पैच का हवाला देते हुए, पृष्ठ १२८ पर लिखा है कि लाल सिंह सिपाही को कत्ल केस संबंधी दोषी समझे जाने के कारण देश से निर्वासित कर दिया गया है।

सेशन जज द्वारा तैयार किए गए केस में दस धार्मिक सूरमों की सूचि में बाबा लहणा सिह का नाम पाँचवें स्थान पर लिखा हुआ था। उन्होंने लहणा सिंह "तरखाण" करके लिखा था। उनके बयानों को कलमबंद करते हुए जज ने लिखा है कि—

'लहणा सिंह मुज़रिम नंबर पाँच ने निर्दोष होने का बहाना किया परंतु बाद में उसने एक बयान दिया जिसका अर्थ, उसका अपने अपराध को स्वीकार करना बनता था। वह स्वीकार करता है कि वह उस जत्थे में शामिल हुआ जिसने कसाइयों पर हमला किया। वह उस समय सफाजंग लिए शास्त्रधारियों की श्रेणी में आता था।

उसने भारतीय दंड संहिता की धारा ३०२ के अंतर्गत सजायाफ़्ता गलती करने का अपराध किया है एवम् न्यायलय चीफ कोर्ट द्वारा सजा तस्दीक किए जाने की शर्त पर, इस लहणा सिंह सुपुत्र मसद्दा सिंह को उसके प्राण त्यागने तक की सजा देने का आदेश देता है।

**हस्ताक्षर**

**डब्ल्यू डी. डेविस, सेशन जज**

इस मुकदमें के मुज़रिमों की सजा को कायम रखने के लिए सेशन जज ने रणजोध सिंह, बाल मुकंद एवम् खान गुलाब कादर असैंसरों की स्वीकृति भी करवाई।

मृत्युदंड देने के लिए केवल सेशन जज का निर्देश ही पर्याप्त नहीं था। फाइल, चीफ कोर्ट ऑफ पंजाब को भेजी गई। ६ सितंबर को चीफ कोर्ट के जज कैंपबैल्ल ने उनके दोष को सही मानकर मृत्युदंड को बहाल रखा। ११ सितंबर को जस्टिस सी.आर. लिंडसे ने सजा पक्की कर दी। चार सिक्खों को १५ सितंबर को फाँसी देने की आज्ञा दी गई।

चार गुरु सपूतों को फाँसी लगाए जाने से पहले उनकी अंतिम इच्छा पूछी गई। उन्होंने बताया कि शहादत का जाम पीने से पूर्व –

अ. वह हरिमंदिर साहिब के पवित्र सरोवर में स्नान करेंगे।

आ. उनको फाँसी लगाने वाला रस्सा गाय की ताँत का नहीं रेशम का होगा।

इ. कोई भी जल्लाद न उनका मुँह कपड़े से न ढके, न ही उनके गले में फाँसी का रस्सा डाले, वह स्वयं ही फाँसी के तख्ते पर झूल जाएँगे।

ऐसे ही हुआ भी, उन्होंने पवित्र सरोवर में से स्नान किया तथा

तेरी सरनि मेरे दीन दयाला।

सुख सागर मेरे गुरु गोपाला।

शब्द गायन करते हुए मजीठा रोड, राम बाग के पास, जहाँ सरेआम एक बड़ के पेड़ के साथ फाँसी लगाया जाना था, पहुँचे। मार्ग में अमृतसर के नागरिक देख रहे थे कि इन लोगों के दिलों में मौत का कोई खौफ नहीं था। उनके चेहरे पहले की भाँति ही ओजस्वी तथा तेजस्वी थे और नूर से दमक रहे थे।

वह समझते थे कि –

मरण मणसा सूरिया हक्क है

जो होय मरनि परवाणो।

सूरे सेई आगे आखिअहि।

दरगह पावहि साची माणों।

एवं

कबीर जिस मरने ते जगु डरें, मेरे मन आनंद।

मरने ही ते पाइयै पूरन परमानंद।

उन्होंने मुस्कराते हुए रस्से गलों में डाल लिए। वह समझते थे कि जिन गायों को उन्होंने ज़िब्हा होने से बचाया वह कृतज्ञ है। उस समय बाबा लहणा सिंह जी के वारिसों में से उनके भाई, बाबा गुज्जर सिंह एवम् संत गंडा सिंह भी वहाँ आए हुए थे। उनके पारिवारिक हवालों से मालूम होता है कि उन्होंने देखा कि बाबा जी के रस्से की गाँठ खिच नहीं रही थी। उन्होंने इसका कारण बताया तो बाबा जी ने प्रत्युत्तर में यह शब्द कहे–

"भाईया जी! राम गायें मेरे पाँवों के नीचे अपने सींग दे रही हैं। परंतु मैंने शहीद अवश्य ही होना है। आप प्रार्थना करो। देखो वह बारह गुरु साहिबान मुझे दर्शन दे रहे हैं।"

इस प्रकार के वचन करते हुए बाबा जी ने अपना ध्यान अकालपुरख के चरणों में जोड़ा, एक और हुलारा लिया तथा :

सूरज किरण मिले जल का जल हुआ राम।

जोती जोति रली संपूर्ण थीआ राम।

दूसरे तीनों सिक्ख शूरवीर संत फतेह सिंह, बील्हा सिंह एवं हाकम सिंह, फाँसी के रस्से स्वयं अपने गर्दनों में डालकर फाँसी पर झूल गए तथा प्रभु के चरणों में जा बिराजे।

इस शहीदी स्थान पर संत हाकम सिंह जी पटवारी की विधवा माता भी पहुँची हुई थी। अपने कमरे की छत्त उधेड़कर, लकड़ी के शत्तीर बाले उतारकर, बैलगाड़ी में भरकर लेकर आई हुई थी। उन लकड़ियों के साथ उसने चारों शहीदों का इकट्ठा ही दाह–संस्कार करना था बाकी शहीदों के परिवारजनों से उसने सहमति लेनी चाही। सहमति देने से इंकार कौन करता?

पूर्ण गुरु मर्यादा द्वारा गो–गरीब के रखवाले शहीदों का दाह–संस्कार करके अस्थियाँ एवम् राख संभालकर अपने वंश को भाग्यशाली समझ कर सभी वारिस अपने–अपने घरों को रवाना हो गए।

शहीद बाबा लहणा सिंह जी के भाइयों के पास लोग शोक–संवेदना व्यक्त करने के लिए आते तो उनके बड़े भाई ने इन शब्दों के साथ –

कबीर संत मुए क्या रोइए, जो अपुने गृह जाइ।
रोवहु साकत बापुरे जु हाटै हाट बिकाइ।

भगवान का सुमिरन करने के लिए कहा ताकि शहीदों की आत्मा को सुख–शांति मिल सके।

बाबा जी तथा उनके साथ शहीद होने वाले सिक्खों की शहादत ने इतिहास की दिशा का, गउ–गरीब की रक्षा तथा अंग्रेजों की नीतियों के विरोध और देश धर्म की स्वतंत्रता के लिए जमाने का पक्ष उजागर कर दिया। कुछ और स्थानों पर भी कुछ विलक्षण घटनाएं घटी।

पीछे लिखे अनुसार जज द्वारा भगौड़े घोषित किये गये झंडा सिंह थट्टा दो वर्ष बाद ११ अगस्त १८७३ ई. को पकड़ लिया गया। एक ही दिन् में सारी कार्यवाही पूरी करके, १२ अगस्त को उसको कातिल ठहराया गया तथा फांसी की सजा दे दी गई। काले पानी भेजे गये सजायाफ़्ता वहीं पर देश तथा कौम हित जान कुर्बान कर गये। यही कुर्बानियां रंग लाई तथा भारत आज़ाद हुआ।

# वंशावली बाबा मसद्दा सिंह भट्टी, गांव पन्नव (गुरदासपुर)

क्रमशः - आगामी पृष्ठ
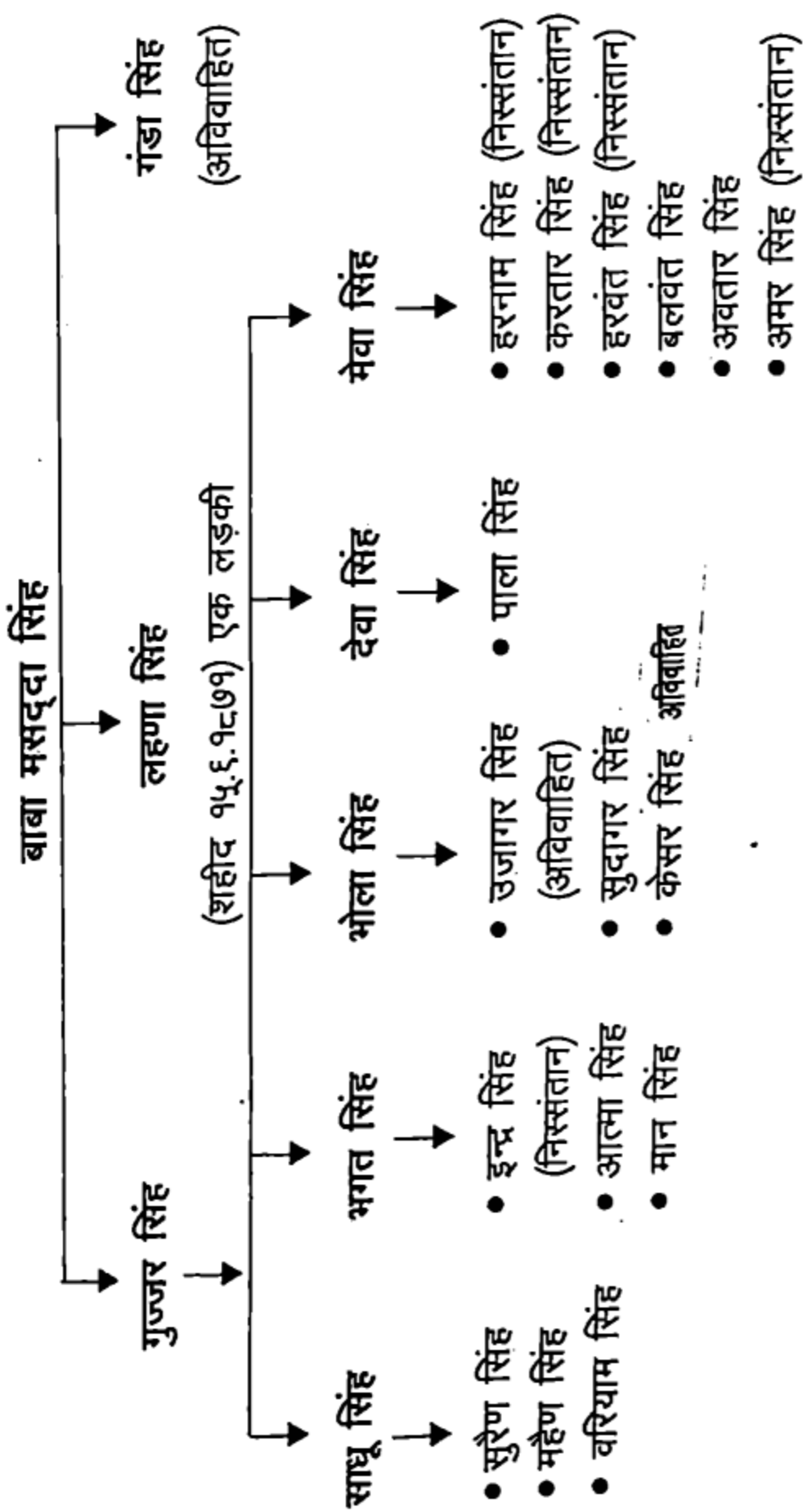
सुरैण सिंह
• प्रताप सिंह
• लाल सिंह
• मक्खन सिंह
महैण सिंह
• प्रीतम सिंह
• दलीप सिंह
• महेंद्र सिंह
• दर्शन सिंह
• सुखदेव सिंह
वरियाम सिंह
• सरवण सिंह
• हरबंस सिंह
• शेर सिंह
• सद्दा सिंह
आत्मा सिंह
• प्रीतम सिंह
• दलीप सिंह
• संतोख सिंह
• जुगिन्द्र सिंह
मान सिंह
• सुलक्खण सिंह
• कूका सिंह
पाला सिंह
• चैन सिंह
• करनैल सिंह
• हजारा सिंह
• अजीत सिंह
• गुरमीत सिंह
सुदागर सिंह
• प्यारा सिंह
• सचिआर सिंह
• महेन्द्र सिंह
बलवंत सिंह
• मोहन सिंह
• गुरदीप सिंह
• उत्तम सिंह
• निर्मल सिंह
अवतार सिंह
• बलबीर सिंह
• कुलबीर सिंह
• सतबीर सिंह

15 सितंबर 1871 – गऊ–गरीब तथा देश धर्म की रक्षा के लिए बलिदान हो रहे धर्म परायण शूरवीर, देश भक्तों की एक झलक।